* श्रीः *

॥ वांचकों सें लेखक की प्रार्थना ॥

प्रिय वाचको !

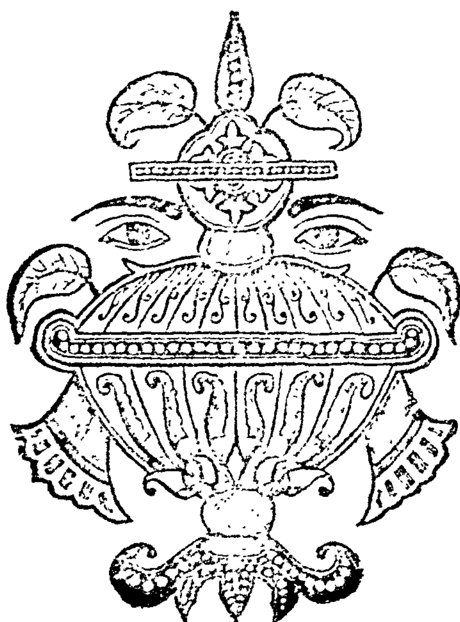
आपलोकों सें प्रार्थना है कि मैंनें जो यह पुस्तक छपाई जिसमैं कई जगहं छपते समय मात्रादि स्पष्ट नहीं उघडी है तथा कई जगहं शब्दों मैं गलती रहगई है इसलिये निवेदन है कि विज्ञजन यथा तथ्य जैसा होना चाहिए वैसाही शब्दोचारण करैंगें मैंनेंतो अपनें मनोत्साह के बलसें तत्वार्थी और न्यायी तथा शान्ति शील धर्मानुरागियों को श्रीजिन प्ररुपित श्रावक धर्म ज्यो द्वादश व्रतरूप है जिसको परमपूज्य श्रीमद्भीखनजी स्वामी नें यथार्थ विस्तार पूर्वक ढालों मैं जोडके फरमाया है उसहीकी धारणा करके ग्राम भीनासर (बीकानेर) वासी श्रावक धनसुखदासजी हीरालालजी के आग्रह से प्रथम वार ८०० पुस्तकैं भावार्थ सहित छपाके प्रगट करी है सो कोई अशुद्धार्थ आयाहो उसका मुझे वारंवार मिच्छामि दुक्कडं है तथा वाचकों सें भी मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे पर कृपा करिके अशुद्ध शब्द के लिए क्षमा करेंगे और उसका भावार्थ समझ के यथा शक्ति व्रत अङ्गीकार करके अपना आत्मोद्धार करेंगे, परंतु परद्रोही अवगुन ग्राही और हीनाचारी निन्दकों के फन्द मैं पडके शुद्ध साधू साध्वी और श्रावक श्राविकाओं के निन्दक नहीं बनेंगे, गुनवानों के गुन सहन नहीं होते तब हीनाचारी हीनाचार के पुष्टयार्थ जगत सें मिलती प्ररुपना

करिके शुद्ध श्रद्धालुवोंको वीतराग प्ररूपित सुमार्ग से उभाड़कर हीनाचारीयों के बनाये ग्रन्थोंको शास्त्र कहके भोलेलोकों को कुयुक्ति लगाकर हिन्सा आदि पांचो आश्रव सेने सेवानें और अनुमोदनें में धर्म प्ररूपते हैं और थोडासा अक्षराभ्यास करके अपनेंही को पण्डित मानरहे हैं किन्तु यह नहीं जानते कि केवल पढनेंसेंही वीतराग कथित धर्मको यथा तथ्य नहीं जान सक्तेहैं कुछ कम दश पूर्वतक मिथ्याती पढ जाता है परंतु मीथ्याती का मीथ्यातीही है, इसही लिए कहनाहै कि जिनागमोंको रहस्योंको समझकर निरारंभी निःपरिग्रही होके संसारी कर्तव्यों से अलगहो जबही आत्मोद्धार होगा।

आपका हितेच्छु श्रावक

गुलाबचंद लूणियां

जयपुर



* श्रीः *

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

* दोहा *

प्रणमूं श्रीअरिहन्त नित, द्वादश गुण संयुक्त ॥
दुष्ट कर्म शत्रूमते, हणियां वरवा मुक्ति ॥ १ ॥

कारज सिद्ध सकलकरी, थये सिद्ध भगवंत ॥
अष्ट गुणे युत ते नमूं, पाया सुख्ख अनन्त ॥ २ ॥

आचारिज बन्दू सदा, गुण षट्तीस सु आर्य ॥
उपदेशक जिन धर्मनां, सारण वारण कार्य्य ॥ ३ ॥

श्रुत ज्ञान द्वादसांग को, पढै पढावे सार ॥
पंचवीस गुणधर सदा, उपाध्याय अणगार ॥ ४ ॥

फुन प्रणमूं सब साधुजन साधै शिव मगतेह ॥
सत बीश गुण शोभता, पंचाचार पालेह ॥ ५ ॥

सुमरूं श्रीभिक्खू गुरू, प्रबल बुद्धि भण्डार ॥
प्रगटे पंचम अरक में, कियो वहोत उपकार ॥ ६ ॥

दया धर्म प्रभुजी कह्यो, आगम मांहि विचार ॥
भिक्खूतास भलीपरें, उलखायो तन्तसार ॥ ७ ॥

तसु अष्टम पट शोभता कालु गणीं गुणगेह ॥
तन मनसें सेयां थकां, पाप विघ्न मेटेह ॥८॥

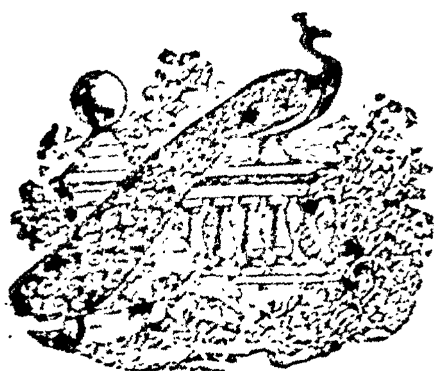
विनय मूल जिन धर्म है, तेहनां दोय प्रकार ॥
श्रमण पंच महाव्रत मयी, श्रावक द्वादश धार ॥९॥

जिन आज्ञा है व्रत में, अव्रत आणां बार ॥
न्याय दृष्टि करि देखिए, पक्ष पात सब टार ॥१०॥

तीन गुप्ति पांचूं सुमति, पंच म्हाव्वय मांन ॥
पाले ते प्रभु पंथमें, अन्य अनेरा जांन ॥११॥

संवरनें वलि निर्जरा, येहिज तेरो पन्थ ॥
चाले तुजकहि चालसें, श्रावकनें निग्रन्थ ॥१२॥

सरल भाव हृदयें धरी, सांभलिए जिन वान ॥
गुलाब कहे व्रत आदरो, भाख्यो श्रीवर्द्धमान ॥१३॥






॥ श्री जैन धर्मो जयति ॥

॥ श्रीसुगुरुभ्यो नमः ॥

* अथ श्रावक धर्म्म विचारः *



वक धर्म क्या है जिसको प्रायः सब ही सम्यग्दृष्टी जीव जानेहुए हैं। लेकिन बहुत से अज्ञानीजीव भ्रमवश मदान्धहोके श्रावक के खाने खिलाने आदि संसारी कर्तव्यको भी श्रावक धर्म समझे हुये हैं कहते हैं श्रावक धर्म अलग है और श्रमण धर्म अलग है परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय के प्रवलोदय से यह नहीं जानते के परस्पर खाना खिलाना तो संसारी व्यवहार इंद्रियपोषण है, वो "आश्रव है" यदि श्रावक धर्म अलग है तो संसारी कर्तव्य से या जिनाज्ञासे ऐसा विचारणा अवश्य ही चाहिये, संसारी कर्तव्यमें जिनाज्ञा कदापि नहीं है, जिस कार्य में जिनाज्ञा है वो ही कार्य निरवद्य और धार्मिक है

उसी कर्तव्यसें अशुभ कर्म निर्जरते हैं और पुन्य बन्ध होताहै, जिस कार्यमें जिनाज्ञा नहीं है उस कार्य सें एकान्त पाप कर्म का बन्ध है और किंचिन्मात्र भी धर्म नहीं है, तो बुद्धिमान् जन सहजमें समझ शक्ते हैं के श्रावक के खाने खिलाने में जिनाज्ञा नहीं है तो यह श्रावक धर्म नहीं है, अव्रत है। सम्यग्दर्शन पाके हिन्सा, झूंट, चोरी, मैथुन, परिग्रहादि आश्रव द्वारोंमें जितनां जितनां प्रवर्तता है वो श्रावक धर्म नहीं है "अव्रताश्रव है" और अव्रताश्रव द्वारा पाप कर्मका बन्ध भगवाननें कहा है अव्रतके सेनें सेवानें भले जाननें में पाप है।

श्रीतीर्थङ्करों नें दोय प्रकारके धर्म प्ररूपे हैं श्रमण धर्म १ श्रमणोपाशक धर्म २ श्रमण धर्म तो पंच महाव्रत रूप, और श्रमणोपाशक धर्म द्वादशव्रत रूप है, साधूके सर्व प्रकारें सावद्य कर्म करनें करानें अनुमोदनें का मन वचन कायासें त्याग है इस सें साधूका शरीर अधिकरण नहीं है उनके किसी प्रकार का पाप कर्म करनें करांने अनुमोदनें का आगार नहीं है तब ही सर्वव्रती संजती कहाते हैं।

श्रावक सर्व व्रती नहीं है "देशव्रती है" सावद्य के त्याग हैं वो देशव्रत संवर है, जीवाजीवादि नव तत्वों कों यथार्थ समझनां शुद्धदेव शुद्धगुरु शुद्धधर्म की परीक्षा करके जिन वचनों की (आस्था) प्रतीति रखके श्रीजिन प्रणीत तत्वोंका शुद्ध श्रद्धान बिनां चारित्र नहीं होता चारित्र के बिनां मोक्ष नहीं हो।

अनादि कालसें जीव पाप कर्मोपार्जन करके चतुर्गति संसाररूप अटवीमें परिभ्रमण कर रहा है अपनें स्वभाव को भूलके परभावमें लिप्त होरहाहै मोह वश अपणी पवित्र आत्माको भव शागरमें डुवोरहा है इसका मुख्य कारण "मिथ्यात्व" ही है, मिथ्यात्व से ही जीव ज्ञानावरणीयादि अशुभ कर्माष्टक के पुंजके पुञ्ज संग्रह करके नरक निगोदादि दुःखोंके भोगी होते हैं।

अठारे प्रकार के पाप कर्मों में मिथ्यादर्शन सल्यही मुख्य है, इसीलियें सद्गुरू का कहनां है हे देवानुप्रिय जहांतक बनें जहां तक "सम्यग्दर्शन" पानेंका ही उद्योग करनां उचित है, मित्थ्यामयी निद्रामें सोतेहुए बहुत समय व्यतीत हुआ, क्या

अभी तक इस निद्रामें सोते ही रहोगे देखो इस निद्रानें तुम्हारा आत्मगुण दबाया है तुम कैसे हो और अब किसतरह होरहे हो, यदि अब सुसंग पायकर भी नहीं जागोगे तो फिर कब जागोगे, यह मनुष्य जन्म आर्यक्षेत्र उत्तमकुल दीर्घायुः पूर्णेन्द्री सद्गुरु संयोग पानां महामुश्किल है।

सद्गुरु संयोग सें ही सब बातें यथार्थ जांनी जाती है सम्यग्दर्शन सूर्योदयसें हीं मिथ्यामयी महान्धकार दूरहोता है, श्रीजिनराज देवनें ज्ञांन १ दर्शन २ चारित्र ३ तपही ४ मुक्ति मार्ग कहा है, इस लिए पूर्वोक्त चातुर्मार्ग की साधनां करो, अपने आत्महित पथको छोडकर अपने शरल और विनयी राह को त्यागकर जगत्पूज्य ऋषिमार्गको भूलकर, तुम किस मार्गको भटकते जारहे हो, यह तुमारा मार्ग नहीं है, कुमार्गको छोडकर सुमार्ग में आनां ही परमप्रिय और मोक्षदाई है, ज्ञानवृद्ध संयमी प्राचीन ऋषिगण ज्यो मार्गचले हैं और कहगये हैं उसी मार्गपर चलनेसें आत्मशक्ति प्रकट होगी और अनन्त सुखोंके भोगी होंगे, अन्यथा आत्म-

शक्ति लुप्तहोनें का ही उपाय है, जरा ज्ञांन नेत्र खोलके देखो संसार बढनेका मार्ग कैसा है ।

* प्रवृत्ति *

संसारी कर्तव्योंकी प्रवृत्ति मार्गको छोडकर निवृत्ति मार्गका अवलम्बन करो प्रवृत्ति मार्गसें जन्म जरा मरणादि दुःखोंका समूह बढता है यदि तुम सदा सर्वदा अचल अटल रहनां चाहते हो तो अपणो जिन प्रणीत निवृत्ति मार्गकों ग्रहण करो अजरामर होनेंका एक येही उपाय है, प्रवृति और निवृत्ति मार्ग क्या है पहले इसकों समझों, प्रवृत्ति मार्ग है जिनाज्ञा बाहर संसारी कामों में प्रवर्त्तनां, गृहस्थाश्रमी अज्ञानी जीव और हिन्सा धर्मी कुगुरुवों का कहनां है अर्थ बलसें बलवान होनेकी चेष्ठा करो, अर्थ हींन होके किसी विषय में भी सफलता नहीं प्राप्त करसकोगे, वाणिज्य में प्रवृत्त हो, अर्थ संग्रह के लिए गिरिशृङ्ग मरुभूमि समुद्रोल्लङ्घनादि घने जङ्गलों में विनां विचारे चले जावो, चाहे जमीन खोद भूगर्भमें प्रवेश कर रत्न संग्रह करो, समुद्र के भीतर गोता लगाकर मोती निकाल ल्यावो, यही क्यों जिस तरह बनसके जिस

तरह अर्थ संग्रह करो, रुपया बडी चीज है किसी प्रकार रुपया तुम्हारे पास होजाय फिर संसार में तुम्हारे लियें कोई चीज भी दुःप्राप्य नहीं रहेगी, इससें जिसतरह बनें उसी तरँह धन धान्यादिक का संग्रह करो, और "निवृत्ति" मार्ग है इनसें (निवर्तनां) छोडणां, चतुर्दशपूर्वधर गणधरोंनें ज्यो वचन श्रीजिनेश्वर महाराज सें सुनके शास्त्र रचे हैं उन शास्त्रों के वाक्य है (धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो) 'अहिन्सा परमोधर्मः और उत्कृष्ट मङ्गल' ऋषिगण वारंवार कह रहे हैं' अर्थही अनर्थका मूल है, यह बात सदैव ध्यानमें रखनां यदि अमर होनां चाहोतो निर्लोभ हो, धनकी लालसा छोडद्यो, वचन निर्वद्य और सत्य कहो, अदत्तग्रहणकोत्यागो, ब्रह्मचर्य्यधरो, संयमी हो, तपस्वी हो।

अब न्यायाश्रयी और तत्वज्ञ पुरुष विचार सकते हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति में कितनां फरक है, शुद्ध नीतिसें विचारकर देखो तो साफ साफ मालुम होता हैं प्रवृत्ति मार्ग सें निवृत्ति मार्ग एकदम विरुद्ध है, संसारका रास्ता और धर्मका रास्ता अलग अलग है, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शिव मार्ग हैं, ज्यो जीव सम दृष्टी

होगा वोह एकाएक कुकर्म करने से डरेगा यथाशक्ति यम नियम अङ्गीकार करैगा, पाप के कामोंमें पाप, और धर्मके काममें धर्म समझनां हीं सम्यग्दर्शन है, जहां तक सम्यग्दर्शनका बलहै तहांतक नरक निगोद तिर्यंच मनुष्य गतीका आयु बंध नहीं होता, यदि होयतो देवायु हो, यही क्यों देव गति में से भी केवल वैमानिक देवायु ही बांध सकता है, कहिये कितनां बडा महात्म्य सम्यक्त्व काहै, सिर्फ यही नहीं सम्यग्दर्शन पानें से बहुत से गुण उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दर्शनी जीव चारित्र मोहनीय क्षयोपसमानुसार व्रत धारणकर देशव्रती या सर्वव्रती गुणस्थान प्राप्त करते हैं सम्यग्दर्शनी के संवरपदार्थ अकर्त्तापण ज्यो जीवका खास गुणहै वो प्रकट होता है।

मिथ्यात्वी जीव अनेक तरहेंके कष्ट सहन कर तप जप शील सन्तोषादि सुकार्य करता है लेकिन संवर पदार्थ की प्राप्ती उन्हें नहीं होती निर्जरा धर्मी हीं है, सूत्रोंमें कहा है बाल अज्ञानीका मास मास खमणातप सम्यग्दृष्टी के व्रत पच्चक्खाण के फलके

षोडसांश नहीं आता, सोलवें ही क्या, हजारमें लाख में करोड में यावत् संख्यात असंख्यातमें भागभी नहीं आसक्ता, सम्यक्त्वी के संवर और निर्जरा दोन्यू धर्म है एक वक्त सम्यक्त्व पाजाने सें अनन्त संसारीका प्रति संसारी होता है, इसीलिये कहना है सम्यक्त्व का पानांही दुर्लभ है शास्त्रों में कहाहै-

चत्तारि परमङ्गाणि दुल्लहाणीहजंतुणो माणुसत्तं।
सुयीसद्धा संजमंमीय वीरियं ॥ १ ॥

अर्थात्—मनुष्य भव १ श्रुतकहिये सिद्धान्त श्रवण २ सत्यश्रद्धान ३ संजममें बल पराक्रम ४ यह च्यार परम अङ्ग जीवको अति दुर्लभ हैं।

तथा कहा है—"सद्धा परम दुल्लहा" याने सुद्ध सरधनां महादुर्लभ है, श्री वीतराग प्रभूनें केवल ज्ञान केवल दर्शनसें लोकाऽलोक के भाव देखा, वैसाही कहाहै उनके वचन सुनके यथार्थ श्रद्धा-करणां और आस्था प्रतीति रखनां उसीका नाम सम्यक्त्व है, सम्यग्दृष्टी के जिन वचन हीं अर्थ पर-मार्थ है, जिन प्रणीत धर्मसें उनके हाड और हाडों की मींगी रंगी हुई है वह समदर्शी देवताओं के

डिगाए भी नहीं डिग सकते, सम्यग्दर्शन में ही सदा अचल और अटल है, स्वामी भीखनजी नें भी ढालमें कहा है—"दिढ समकितधर थोडला" याने दृढ सम्यक्त्व धारी बहुत थोडे हैं, स्वामी भीखनजी कौनथे कबहुए और कैसी प्ररूपणां करी यदि इन सब बातोंकों यथार्थ जाननां है तो भिक्षु चरित्र वाचणों से मालूम होजायगा, स्वामी भीखनजी इस भरतक्षेत्र पंचम कालमें मानूं जिनराज वत् होगये हैं,

जैसा रागद्वेष रहित निर्मलमार्ग श्रीवीतराग प्रभूका है ज्यो श्रमण माहणका आदेश और उपदेश मतहणू मतहणों है वोही आदेश और उपदेश स्वामी भीखनजी का है, साधू और श्रावक धर्म श्रीवीरप्रभूनें सूत्रोंमें कहा है वैसाही कथन स्वामी का है लेकिन बहुतसे लोग कहते हैं भीखनजी नें दयाधर्म को उठादिया और गुरूसे लड झगड के अलग हो अपना मजहब अलग जमालिया इत्यादि अनेकानेक बातें मनमांनें सो भोले भाले लोगोंको बहकानें के लियें या अपनी उन्नती के लिए कह रहे हैं मगर न्यायवादी पुरुषको जरा सोच विचार-लेना परमावश्यक है देखो श्रीभगवाननें तो कहा

है पृथिव्यादि षट्कायों के जीवोंको न मारनां, न मरानां, न अपने शरीर सें किसी प्राणी को कष्ठ देना, भय नहीं उपजाना, वो ही अभय दान है परन्तु एकेंद्रियको मारकर पंचेन्द्रिको साता उपजाने में धर्म नहीं कहा है असंजमीका जीवितव्य और बाल मरण वांछणे में एकान्त पाप ही कहा है। धर्मार्थ हिंसा करने में दोष नहीं यह वचन अनार्थियों का है श्रीआचाराङ्ग सूत्रमें खुलासा कहा है, ऐसी अनेक बातें स्वामी भीखनजी नें कही है—न्याया-श्रयी पुरुष पक्षपात छोडकर स्वामी कृत ग्रंथ चोपाई बोल थोकडा ढाल स्तवन वगेरह पढ़ेंगे तो साफ मालूम होजायगा के स्वामी के प्ररूपण और भगवानके प्ररूपणामें फरक नहीं है। मोक्षाभिलाषी जीवोंको तबही कहते हैं के हे भिव्यवर्ग यह मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पाया है तो शुद्ध सं-यम पालनें वाले मुनिराजों सें सूत्र सिद्धान्त श्रवण करो, जिन वीरप्रभुको सर्वदर्शी सर्वज्ञ मान रहे हो तो उनहीं का कथन ज्यो जिनागम हैं सो सुनों, केवल सुनके ही न रहो सत्य सरधो और यथा-शक्ति व्रत धारण करो, अव्रत घटावो, तब इस जीव

का भलाहोगा, भ्रष्टाचारियों की संगतसें पक्ष पातमें पडके शुद्ध आचार पालने वालोंके निन्दक मतबनों, शुद्ध पंचमहाव्रत पालनें वाले, ४२ दोष टालकर आहार पांनी के लेनेवाले, पंचेन्द्रीके विषयों को जीतने वाले जतीलोगों के उपासक बनूं तब सब बातें ज्यो सूत्रोंमें कही है मालुम होगी।

देखो अपनें पूज्य वा पूर्व ऋषियोंने क्या क्या वाक्य कहे हैं, अहिन्सा, सत्य, अदत्तादाननिवर्तन, ब्रह्मचर्य्य, निर्लोभतादि ही शिव मार्गकी साधनां कही है। देखो विजय देवसूरीनै क्या आत्महितोपदेश कहा है।

चेतोरे चेतो प्राणियां, मतिराचोरे रमणी रे संगके सेवो रे जिनवांणी ॥ ए आंकडी ॥

सुरतरुनीपरैं दोहिलोरे, लाधो नर अवतार। अहलो जनम किम हारीये, कांई कीज्योरे मनमांहि विचार के ॥ चेतोरे० ॥ १ ॥ पहली तो समकित सेवियेरे, जेछै धरमनो मूल। संजम समकित बाहिरो, जिन भाष्योरे तुस खंडवा तुल्य के ॥चेतोरे०॥२॥ अरिहन्त देव आराधज्योरे, गुरु गिरवा शुद्ध साध।

धर्म जिनेश्वरें भाषियो, एसमकितरे सुरतरु समलाध के ॥ चेतोरे० ॥ ३ ॥ तहत करीनें शरधज्योरे, जे भाष्यो जगनाथ। पांचोंही आश्रव परिहरो, जिम-मिलियेरे शिव पुरनों साथ के ॥ चेतोरे० ॥ ४ ॥ जीव वंछे सर्व जीवणोंरे, मरण न वंछे कोय। आप-समूं कर लेखवो, त्रस थावररे हणज्यो मत कोय के॥ चेतोरे० ॥ ५ ॥ अपजस अकीर्ति इण भवेंरे, पर भव दुःख अनेक। कूड कहतां पामीये, कांई आणों रे, मन मांहि विवेक के ॥ चेतोरे० ॥ ६ ॥ चोरीले-वे कोई पर तिणोंरे तिणथी लागेछे पाप। तो धन कंचन किम चोरीये तेथी बांधेरे भव भवमें संताप के ॥ चेतोरे० ॥ ७ ॥ महिला संगे दुहव्यारे, नव लख सन्नी उपजन्त क्षणेक सुखरे कारणें, किम की-जेरे हिंसा मतिवंत के ॥ चेतोरे० ॥ ८ ॥ पुत्र कलत्र घर हाट नींरे, ममता मतकीज्यो फोक जेह परिग्रह मांहिछे, ते तो छांडीरे गया बहुला लोक के ॥ चेतोरे० ॥ ९ ॥ अल्प दिवशनों पाहुणोंरे, सहुको इण संसार। इकदिन ऊठी जावणों, कुणजां-णेंरे किणहीं अवतार के ॥ चेतोरे० ॥ १० ॥ व्याधि जरा ज्यां लग नहीं रे, तहां लग धर्म संभाल। धरा

सजल घन बरसतां, कुण समरथरे बांधेवा पालके चेतोरे० ॥ ११ ॥ अंजलीनां जल नींपरैंरे, त्तण त्तण छीजै छै आव। जावैते नहिं वाहुडै, जरा घालैरे जोवन में घाव के ॥ चेतोरे० ॥ १२ ॥ मात पिता बन्धव बहूरे, पुत्र कलत्र परिवार। स्वारथ लग सहुको सगा, कोई परभवरे, नहिं राखण हारके ॥ चेतोरे० ॥ १३ ॥ क्रोधमान माया तजोरे, लाभ न करजो लगार। समता रसपूरी रहा, बले दोहिलोरे मानव अवतारके ॥ चेतोरे० ॥ १४ ॥ आरम्भ छोडो आतमारे, पीवो संजम रस पूर। शिव रमणी वेगावरो, इम भाषेरे विजयदेव सूरके ॥ चेतोरे० ॥ १५ ॥ इति ॥

प्रियवरो इस ढालका अर्थ समझो, न्याय दृष्टी सें देखो, विशुद्ध बुद्धिसें विचारो, विजयदेव सूरी नें क्या कहा है, पंचाश्रव द्वार सेनें सेवानें में एकान्त पाप कहा है, किंचित्‌भी आश्रव द्वार सेनें सेवानें में धर्मका लेश नहीं हैं सम्यक्त्व का सेवना हीं मुख्य कहा है, शुद्धदेव गुरु धर्मकी साधना ही सम्यक्त्व और शिव मार्ग है।

कई लोग कहते हैं जिन प्रतिमां की पूजा जल चन्दन पुष्पादि अष्ट द्रव्यों सें करनां यही श्रावक धर्म है, द्रोपद राजाकी पुत्री द्रौपदीनें पूजा करी है, तथा देवलोकों में देवता पूजन करते हैं, जिसका उत्तर यह है, देवता श्रावक नहीं है देवता तो मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी दानूँ ही प्रकार के होते हैं, मिथ्यात्वी है उनमें पहला गुणस्थान है सम्यक्त्वी हैं, उनमें चतुर्थ गुणस्थान है, लेकिन पंचम गुणस्थान ज्यो श्रावक पद है वोह किसी भी देवतामें नहीं है, तो प्रतिमां पूजना श्रावक धर्म कहां रहा 'ग्रामोनास्तितर्हिसीमां विवादः क' याने गांव नहीं है वहां सीमांकी लड़ाई क्यों ग्राम विना सीमां नहीं होती, तथा द्रौपदीने प्रतिमां की पूजन करी उस वक्त उसमें सम्यक्त्व थी ऐसा सूत्रमें भी नहीं कहा है और उस वक्त सम्यक्त्व का होना भी संभव नहीं है क्योंकि द्रौपदीने पूर्व भवमें पांच भरतार वरने का नियाणां किया था तो ऐसा तीव्र रसका निधान पूर्ण हुए विना सम्यक्त्व कैसे फरस सकती है, तथा आचार्य गंध हस्तीनें उवानिर्युक्ति टीकामें द्रौपदीके एक पुत्र होने के बाद सम्यक्त्व स्पर्शनां

कहा है और स्वयंबरामंडपमें आते वक्त द्रौपदी ने पूजन करी ऐसा अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र में कहा है तो उस वक्त द्रौपदीके काम भोगकी तीव्राभिलाषा स्पष्ट दीखती है, इसलिए उस वक्त समकित का होना असंभव है। आनन्दादि दश श्रावकों का वर्णन श्रीवीर प्रभूनें उपासक दसा सूत्र में कहा है, तहां कहीं भी प्रतिमां पूजने का अधिकार कहा नहीं, श्रावक धर्म द्वादश व्रत रूप है उनका वर्णन विस्तार पूर्वक कहा है, ज्यो व्रत है वो श्रावक धर्म है अव्रत है वह अधर्म है, देवलोको में ज्यो देवता जिन प्रतिमां पूजते हैं वो उपजते ही राज्याभिषेक समय सस्त्र प्रतिमां पूतली आदि ३२ बत्तीस प्रकार के बांनें की पूजन करते हैं उनकी मर्यादा वोही है हितकारी सुखकारी विघ्न निवर्तक और फल सहित उनको इस भवमें पुन्यानुसार पूर्व पश्चात् है, संसारी मंगल है, अगर धार्मिक कार्य हो तो केवल समदृष्टी ही को पूजनां चाहिये मिथ्यात्वी तो धर्म अधर्म समझते नहीं लेकिन देवलोक की मर्यादा राज बैठने के वक्त ज्यो है सो सब उनकूं करनी पड़ती ही है मिथ्या-

त्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं परं द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे होसकती है ज्यो जिनाज्ञा वहिस्कृत है वो सावद्य है, और सावद्य कार्य सें एकान्त पाप कर्म का ही वन्ध हैं, श्रावक के सामायक पोषह में सावद्य जोगका त्याग है इस लिए द्रव्य पूजा नहीं करता, भाव पूजा ज्यो बन्दनां जयणायुक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुननां स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवद्य कार्यकी जिनाज्ञा है वोह सब कार्य सामायक पोषह में करता कराता और अनुमोदता है और उस ही कार्य सें अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव लोकसें अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहावीरस्वामी के पास आया तब भगवन्त सें पूछा मैं आपको बंदना नमस्कार करूँ तब प्रभूने कहा यह तुमारा पुराना आचार है १ जीत आचार है २ यह तुमारा कार्य है ३ यह तुम्हें करणे योग्य है ४ यह तुमको आचरणे योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करणें के लिए पूछा तो आदर नहीं दिया मौनरक्खी और मनमें भला नहीं

जानां ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणी सूत्र में है, तो न्यायवादी और निरपक्षीको विचारणां चाहिए कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवंत श्रीमहावीर-स्वामीने अपने मुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापनां निक्षेपा के आगे नाचनां कूदनां ताल मंजीरे आदि बजानां तथा एकेन्द्री जीवोंको बिनास करनें की आज्ञा कैसें होसकती है, जब श्रीवीर प्रभूनें जिस कार्य को अच्छा ही नहीं जानां तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जांन सकते हैं सम्यग्दृष्टी जीव जब तक सर्वव्रती नहीं हुआ है जब तक संसार में अनेक कर्तव्य करता है परंतु धर्म तो उसही कार्य में समझैगा जिस कार्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य में सम्यग्दृष्टी तो कदापि धर्म नहीं समझ सकता। देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

* ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत *

दुलहो नर भव पामणों जीवनैं, दुलहो श्रावक कुल अवतारो, गुणवन्त गुरुनों संग छै दोहिलो

त्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं परं द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे होसकती है ज्यो जिनाज्ञा वहिस्कृत है वो सावद्य है, और सावद्य कार्य सें एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध हैं, श्रावक के सामायक पोषह में सावद्य जोगका त्याग है इस लिए द्रव्य पूजा नहीं करता, भाव पूजा ज्यो वन्दनां नयणायुक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुननां स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवद्य कार्यकी जिनाज्ञा है वोह सब कार्य सामायक पोषह में करता कराता और अनुमोदता है और उस ही कार्य सें अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव लोकसें अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहावीरस्वामी के पास आया तब भगवन्त सें पूछा मैं आपको बंदना नमस्कार करूँ तब प्रभूने कहा यह तुमारा पुराना आचार है १ जीत आचार है २ यह तुमारा कार्य है ३ यह तुम्हें करणे योग्य है ४ यह तुमको आचरणे योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करणें के लिए पूछा तो आदर नहीं दिया मौनरक्खी और मनमें भला नहीं

जानां ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणीं सूत्र में है, तो न्यायवादी और निरपक्षोंको विचारणां चाहिए कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवंत श्रीमहावीर-स्वामीने अपने मुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापनां निक्षेपा के आगे नाचनां कूदनां ताल मंजीरे आदि बजानां तथा एकेन्द्री जीवोंको विनास कर्नें की आज्ञा कैसें होसकती है, जब श्रीवीर प्रभूनें जिस कार्य को अच्छा ही नहीं जानां तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जांन सकते हैं सम्यग्दृष्टी जीव जब तक सर्वव्रती नहीं हुआ है जब तक संसार में अनेक कर्तव्य करता है परंतु धर्म तो उसही कार्य में समझैगा जिस कार्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य में सम्यग्दृष्टी तो कदापि धर्म नहीं समझ सकता । देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

* ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत *

दुलहो नर भव पामणों जीवनैं, दुलहो श्रावक कुल अवतारो, गुणवन्त गुरूनों संग छै दोहिलो

ते पामीनें मत हारोरे प्रांणीं जीवदया व्रत पालो ॥ १ ॥ आश्रव प्रति पक्ष संवर बोल्यो, तेहनीं रहस्य विचारो, आरम्भ आश्रव संजम सम्बर, इम-जांणीं जीव म मारोरे ॥ प्रांणीं जी० ॥ २ ॥ जीव सहूते जीवणू वञ्छे, मरण न वंछै कोई, आपणै दुख छै जिम छै परनें, हिये विमासी जोईरे ॥ प्रांणीं जी० ॥ ३ ॥ अंग उपाङ्ग शस्त्र धारा अणीं सूँ, नख चख छेदै कोई, जेहवी बेदनां मनुष्यने होवै तेहवी एकेन्द्रीनें होईरे ॥ प्रांणीं जी० ॥ ४ ॥ जोजरा पुरुषनैं बलवन्ततरुणो, देवै मुष्ठि प्रहारो । जेदुख वेदै तेहवो एकेंद्रिनें, लीधां हाथ मझारोरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ५ ॥ समकित बिन गज भव सुस-लारी, दया चोखे चित पाली । प्रति संसार कियो तिणठामें, मेघकुँमर हुयो दुखटालीरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ६ ॥ अभय दांन दानां मांहि मोटो, बलेदांन सुपात्रें दाख्यो । आगम सांभलनै जिनमत जोवो, मूलदया धर्म भाष्योरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ७ ॥ लोह शिला ज्यो तिरै महोदधि, कदा पश्चिम ऊगै भानूः ॥ सहज अग्नि पण शीतल होवै, तोही हिंसामें धर्म म जांणूरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ८ ॥

रवि आंथमियां दिवस विमासै, अहिमुख अमृत जोवै ॥ विषखायां वले जीवणूं बांछै तो हिंसामें धर्म होवेरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ९ ॥ अग्नि सींचीनें कमल वधारै, चीर धोवा न कादो आणैं ॥ ज्यों कुगुरु प्रसंगे मूरख मानव, जीवहणै धर्म जाणैरे ॥ प्रांणी जी० ॥ १० ॥ आगम वेद पुराण कुरान में कह्यो दया धर्म सारो ॥ वलि जिनजीरा वचन सांचाजाणूं तो, छकाय जीवांनें मतमारोरे ॥ प्रांणी जी० ॥ ११ ॥ अर्थ अनर्थ धर्म जांणीनें, जीवहणै मन्द बुद्धि ॥ पिण धर्मकाजें छकायहणैं त्यांरी, सरधा घणीछै औंधीरें ॥ प्रांणी जी० ॥१२॥ सूईरेनांकै सीधड़ोपोवैं, ते किम आधो पैसे ॥ हिंसा मांहि धर्म प्ररूपै, ते सालो साल न बैसेरे ॥ प्रांणी जी० ॥ १३ ॥ पिता विनां पुत्र उपन्नो, मा विन बेटो जायो ॥ यों हिंसामें धर्म प्ररूपै, यो मूनै अचरिज आयोरे ॥ प्रांणीजी ॥ १४ ॥ पार्श्वचन्द्र सूरिभणै इण परैं आणांसहित करुणां पालै ते नर दुर्गति ना दुखटालै ज्ञांनकलाउजवालेरे प्रांणी जी० ॥१५॥ इति

* अथ ढाल दूजी चाल तेहीज *

चैत्य मंदिर मांहि वृक्षय ज ऊग्यो, अनन्त जीवानूं बासो ॥ लोह कुहाड़ीले आपणछेदे, कांई करो दुर्गति वासोरे मुनिवर हिंसा धरम कांई भाखो ॥ १ ॥ सांच कहै तो ते नहिं मांनै, कूड कहै ते कीजे, ॥ असत्य भाषी नैं हीणांचारी, तेगुरु कर आघालीजे रे ॥ मुनि० ॥ २ ॥ चारित्र पाली मुक्ति पहूंता, ते मारग नहिं थापो। मूढ मती होई जीव विराधो, न्यायकरो एहवो पापोरे ॥ मुनि० ॥ ३ ॥ धरम उथापो नें हिंसा थापो, छकाय प्रांण लुटावो । धर्म तणूं छांटो नहिं मांहीं, अहलो जन्म गुमावोरे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥ वनमें बावरी बावर मांडै, लोकांमें हुवै पुकारो। भगवन्त आगलि बावर मांड्यो लाखां कोड़ांरो संहारोरे ॥ मुनि० ॥५॥ उणांनें चाम चाहिजे नैं मांस खाईजे पेटरे कारण खावै । वैं जीव वीराधिनै मन पछतावैं इणारो ज्वाब न आवैरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ थे चाम न भीटों मांस न खावो कांई तुम जीव हणावो । थे भगवन्त मांथै दूषण द्योछो न्याय तुमे दुर्गति जा-

वोरे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥ खाजा लाडू सेव सुहालीं भर भर थाल्यां ल्यावो वै त्यागी थे भोगलगावो कांई तुमें दुर्गति जावोरे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥ कई श्रावक राते अन्न न खावे तुमे देवने कांई चढावो। मारग छोड कुमारग च्याल्या एकरणी सें दुखपावोरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ भगवन्त बचन नीं प्रतीति नहीं छै तिणथी फैन करावो । देव लोकथी तो उरैं जाणीजे निश्चै निगोदमें जावोरे ॥ मुनि० ॥१०॥ देवरे कारणैं छकाय हणावो, गुरुरे कारण खावो। धर्मरै कारण हँस हँस ल्यावो थे किणरै नांव छुडा- वोरे ॥ मुनि० ॥ ११ ॥ प्रीति पुराणीं थांसूँ पहली हूंती तिणसूं थांनै चितराउं । मैं म्हारो मन निर्मल कीधो जिन मारग गुण गाउंरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥ सावकरीनै भगवन्त पूजो द्रव्यै दूर करावो । सुखे समाधे मोक्ष पधारो बहुला सुख जिम पावोरे ॥ मुनि० ॥ १३ ॥ साधूतो छकायनां पिहर थे कहिं कहिं कांई हणावो । अरज हमारी सांची मांनूँ फेर चोरासी में नाहिं आवोरे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥ पार्श्वचन्द्र कहे चारित्र लेई आरंभ थी मनटालो। वीर वचन थे सांचो परूपो सूधो संजम पालोरे ॥ मुनिवर हिंसा धरम कांई भाखो ॥ १५ ॥ इति

अब विवेकी जीवों को पक्ष पात रहित होके विचारणां चाहिये कि केवल स्वामी भीखनजी नें हीं द्रव्य पूजाको सावद्य नहिं कहा है स्वामी भीखनजी के हुए पहले ज्यो आचार्य और जती हुये उनमें सें बहुतसो नें कहा है; देखो महानिशीथ सूत्रके पंचम अध्ययन में कमलप्रभाचार्यने कहा है जिनालय सर्व सावद्य है मुझें आचरणे योग्य और प्ररूपणां योग्य नहीं है तथा श्रीभगवन्त महावीर स्वामी निर्वाण हुए ९८० वर्ष पीछे श्रीदेवर्द्धिगणी सूत्र लिखे उनके ५५ वर्ष पीछे हरिभद्र सूरी स्वर्ग हुए जिनोंने महानिशीथ सूत्रका उद्धार किया और चैत्यवास खंडन किया, अभयदेव सूरीके गुरु जिनेश्वर सूरी तथा बुद्धिसागर सूरी सं० १०८४ में दुर्लभ देवकी सभामें चैत्यवासियों से विवाद कर जय प्राप्त हुये उनके प्रशिष्य जिनवल्लभ सूरीने जिनागम का पक्ष ले ४० काव्य का संघपट्ट ग्रंथ बनाया उनोंने चैत्यवासियों का तथा सिथलाचारियों का भेषधारियों का कैसा खंडन किया है वो संघपट्ट ग्रंथ बांचने से स्पष्ट मालुम होसक्ता है जिन प्रतिमा यात्राके लिए संघपट्ट की २१ वीं गाथामें कहा है कि—

काव्य २१वां संघपट्टक ग्रंथका

आकृष्टुं मुग्ध मीनान् बड़िश पिशितव द्बिंबमा-
दर्श्य जैनं । तन्नाम्नारम्यरूपानपवरकमठान्
स्वेष्ट सिद्धैय विधाप्य ॥ यात्रास्नात्राद्युपायैर्न
मसितक निशाजागराद्यै श्छलैश्च । श्रद्धालुर्नाम
जैनै श्छलितइव शठै र्वंच्यते हा जनोऽयम् ॥२१॥

भावार्थ ।

अर्थात् जैसे मच्छीगर मच्छी पकड़ते समय लोहके कांटे पर मांस लगाके मच्छियों को ललचाके जालमें पकड़तेहैं वैसेही द्रव्य लिंगी भेषधारी स्व स्वार्थ के लिए मूर्ख लोगोंको जिन बिंब दिखाके और यात्रा स्नात्र का महाफल बताके श्रधालु जैनीयों को छलरहेहैं याने मोक्षमार्ग से विमुखकर भवसागर में डबोतेहैं

जिन वल्लभ शूरिनें मूलकाव्य में ऐसा कहाहै उनके पाट श्रीजिनदत्तशूरि दादाजी हुए उन्होनें भी शिथिलाचारी द्रव्य लिंगी तथा चैत्य वासियों का खंडन कियाहै उनके पाट जिन पतिशूरि हुए उन्होने संघपट्टक ग्रंथ ४४ काव्योंकी टीका करीब तीनहजार श्लोक प्रमाण करी ये सब अधिकार पुस्तक संघ पट्टक छपी हुई के प्रस्तावना में कहाहै, तथा अर्थ करने वालोंनें अपनी श्रद्धानुसार कई जगहें विपरीत अर्थ कियाहै परंतु मूल काव्य २१ वांमेंतो जिनवल्लभ शूरिनें ज्यो कहा सो ऊपर लिखाहीहै, तथा द्वादसांगरूप श्रीजिनवचन गणधररचित

हैं उन्होंमें जगहें जगहें पंचमहाव्रतमयी या द्वादसव्रतमयी धर्म कहाहै जीव हिन्साका फल महा दुःख दायीही कहा है प्रथम अंग श्रीआचारंग सुत्रमें देवल या प्रतिमा के लिए पृथ्वी काय हणों उसें मन्द बुद्धी कहाहै परंतु कई आचारजोंने ग्रंथोमें मूल सूत्रोंसे विपरीतार्थ कर अशुद्ध प्ररूपणा करी तथा सिथिला चारी कररहेहैं कहतेहैं साधूको तो कल्पतानहीं लेकिन श्रावक का धर्महै, जल चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप फल नैवेद्य आदि द्रव्योंसे जिन प्रतिमाको पूजना द्रव्य खरचकर मंदिर बनवाना सारंगी तबले आदि बाजित्रों द्वारा गाना, नृत्य करना, तीर्थ करोंकी भक्तीहैं इसमें महा पुन्योपार्जन होताहै और मुक्ति मार्ग है, ऐसी प्ररूपना करते हैं परंतु बुद्धिवान मोक्षाभिलाषियों को निरपक्ष होके विचारना चाहिए तीर्थंकरदेव निरारंभीथे या आरंभीथे! वो सर्वज्ञपुरुष सावद्य के त्यागीथे या भोगी? सचित द्रव्यका संघट्टा करतेथे या नहीं, अचित वस्तु भी उनके लिए कोई ग्रहस्थ किसी वक्त करतातो उसें लेतेथे या नहीं ऐसा विचारना तो वाजिबहै, यदि वो श्रीवीतराग प्रभु सचित वस्तुका संघट्टा नहीं करते करातेथे तथा करने में महा दोष समझतेथे और अपने शिष्य साधू साध्वीयों को निरदोष आचार पलातेथे ऐसाही प्ररूपतेथे तो फिर उन्ही पुरुषोंकी ध्यानारूढ प्रतिमा बनाके उसें जिन समान समझके जिस जिस वस्तुवों के वो त्यागीथे उन्ही वस्तुवोंका स्पर्श कराना और भक्ति समझ उनके आगे चढाना ज्ञानहै या अज्ञान! तथा हिन्सा करके धर्म समझना समकितहै या मिथ्यात्व! सावद्य जोग है या निरवद्य जोग! अगर द्रव्यपूजा करना निरवद्य जोगहैं तो साधू मुनिराज क्यों नहीं करते तथा श्रावक सामायक पो-

पहमें क्यों नहीं करते! लेकिन करें कैसें सावद्य जोगहै जिनाज्ञा बाहरहैं, जब करना नहीं तो कराना और करते हुएको अनुमोदनें में धर्म कैसे होसक्ताहै जिनवल्लभ सूरिने मूलकाव्यमें कहा सो ऊपर कहाहीहै, पार्स्वचंद्र शूरिकृत ढालमें और कमल प्रभाचार्य नें महानिसीथ सूत्रमें क्या कहा है अथवा लूकाजी आदि अनेकोंनें द्रव्यपूजा में धर्म नहीं कहा है, तब कोई ऐसा कहै के तुम जिस आचार्य और यतियोंको मानतेही नहीं हो तो फिर उनका कथन की साक्षी क्यों देतेहो जिसका उत्तर यह है के ज्यो बचन एकादस अंगमें मिलते हुएहैं बोह तब हमको माननें योग्यहै और मानतेहैं केवल हमेंहीं क्या सब सम्यग्दृष्टीही एकादस अंगके अनुकूल बचन ज्योहैं उनें सत्य मानतेहैं और ज्यो एकादस अंगसें प्रतिकूल बचनहै वोह असत्य मानतेहैं किन्तु सत्य को सत्य समझनें सें वक्ताकी सर्व बकता सत्य माननां ऐसा कदापि सिद्ध नहीं होसक्ता, देखो श्रीभगवती शूत्रमें कहाहै सोमल ब्राह्मन भगवंत श्रीमहावीर स्वामी को पूछा सरसव भक्ष है या अभक्ष, तब भगवंत नें उसही के शास्त्र का प्रमाण देके फरमाया है सोमल तुमारा ब्राह्मन सबंधी शास्त्र में सरसवके दो भेद कहेहैं मित्रसरसव १ धान्य सरसव २ इत्यादि विस्तार पूर्वक अधिकारहै, तो भगवंतनेंही अन्य मतीके शास्त्रकी साक्षी देके समझाया तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अगर किसी वक्त अन्यशास्त्रकी या आचारजोंके बनाए हुए ग्रन्थोंकी साक्षी देके युक्ति पूर्वकदृष्टान्तों उदाहरण देके उसको दृढ असत्य करा देवें तो क्या दोषकी बातहै, ज्यो सत्य बातहै वोह तो सत्यही रहैगी जी चाहे सो कहो मिथ्या त्वी या सम्यक्त्वी लेकिन सत्य बातोंको सत्यही समझी जायगी

न्यायवादी उसे शास्त्रानुकूलही कहेंगे, जिनोक्त शास्त्रोंमें भी जगें जगें अहिंसा धर्म ही कहाहै, धर्म हेतु जीवहणयां दोषनहीं यह बचन तो अनार्य लोगोंकाहै आचारंग सूत्र में खुलासा पाठहै, तथा देवल प्रतिमाके लिए पृथ्वी आदि हणें उसे मन्द बुद्धि श्रीदसमां अंगमें कहाहै मगर प्रतिमापूजते जीवों की हिंसा का दोष नहीं ऐसा वाक्य गणधर कृत शास्त्रों में कहीं भी नहीं है, इसहीलिए जैन धर्मानुरागीयों में नम्रता के साथ ऊपर कहा और कहरहेहैं हे देवानुप्रियो निरपक्षी होके विचारो श्रीजिन आज्ञा बाहरका कर्त्तव्य एकान्त सावद्यही है उसमें जिनप्रणीत धर्मका लेश न समझो, प्रथमांगमें भगवननें यही कहा है मेरी आज्ञा में मेरा धर्म है इसहीलिए कहना है धर्माधर्म को यथार्थ समझकर जिन बचनोंकी आस्थाप्रतीत रखना उसही का नाम दृढ समकितहै, समकितधारी जबतक सर्व व्रती नहीं हुयाहै तबतक खानापीना पहरना ओढनां स्नान करना कामभोगसेना द्रव्यसंग्रहकरना मट्टी गोबर दधि दोब अक्षत तथा कुलदेवी देवताओंको पूजना संसारिक मंगलकरना विवाह समय या अन्य समय जिनप्रतिमा को पूजना आदि इस तरह अनेक जिन आज्ञा बाहर का कर्त्तव्य करता कराताहै लेकिन जिनाज्ञा बहिस्कृत कर्त्तव्य में धर्म कदापि नहीं समझता, क्षायक या क्षयोपसम समकित धारी तो अनेक सावद्य कार्य करना कराताहै व्योपार वाणिज्य संग्राम दगाठगा पुत्रपौत्रादि का विवाह और कुसकर्म करताहै परंतु जिन आज्ञा बाहर का कार्यमें धर्म नहीं, वैसेही देवलोकोंमें देवता जिनप्रतिमादि ३२ प्रकार के थाने पूजतेहैं वो उनकी स्वर्ग स्थिती है सबही को करना होताहै ग्रहस्थ लाय में द्रव्य निकालके लगावे

उनको पुण्य पच्छा थान पूर्व पस्चात हितकारी सुखकारी मोक्ष-दायी और फलदायक शास्त्रों में कहाहै, वैसाही प्रतिमा पूजनमें जाणनाचाहिए. क्योंकि दोनू मगें एकसा पाठहै परंतु जिस के मोहकर्मका प्रबलोदयहै उनका शास्त्र सत्यवत परणवें हैं वो विपरीत अर्थ करके हिन्सामें वा जिनआज्ञा बाहर धर्म प्ररूपते हैं, और जिन वंदन समय वा चारित्र लेनेसें पेचा पच्छाहै तो समझना चाहिए ए परभवके लिएहै, न्यायाश्रयी और जिन आज्ञा में धर्म समझने वाले जिनधर्मी तो जिनआज्ञा बाहर धर्म कदापि नहीं समझ सकते, उनको तो जिन बचनही अर्थ और परम अर्थहै उनकी जिन प्ररूपित धरमही सें हाड़ की मींगी रंगरया है ऐसे दृढ समकित धारी जीव बहुत थोडे होतेहैं सोही स्वामी भीखनजीनें ढालमें कहाहै ।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

दृढ समकित धर थोडला, समकित बिन शिव-दूर । भवियण । भव्यजीवां तुमे सांभलो, पामै बिरला सूर ॥ भवियण ॥ दृढ समकित धर थोडला ॥ ए आंकडी ॥ १ ॥ समकित समकित कर रह्या, मर्म न जाणें कोय ॥ भ० ॥ जिण घट समकित परग में, ते घट बिरला होय ॥ भ० दृढ० ॥ २ ॥ तिण घट समकित रूपियो, ऊगयो सूरज सार ॥ भ० ॥ जिण घट हुवो चांदणों, दूरगयो अन्धकार ॥ भ० ॥ दृढ समकित धर थोडला ॥ ३ ॥

भावार्थ

कहते हैं कि दृढ समकित धारी जीव थोडे हैं सम्यक्त्व विना शिवकहिये मोक्ष बहुत दूर है इसलिये भव्यजनों तुम सुनों सम्यक्त्व कोई विरला शूरवीर ही पाते हैं, जगतमें समकित समकित सबही कह रहे हैं लेकिन मर्म नहीं जानते, जिस पुरुष के हृदयमें सम्यक्त्व परगमी और जिसके हृदयमें सम्यक्त्व परितः सर्वतः रम रहा है ऐसे कोई विरले हलकर्मी हैं, जिनके हृदयमें सम्यक्त्व रूप सूर्योदय हुआ है उनके मिथ्यात्व मयी अन्धकार दूर होके अलौकिक प्रकाश हो रहा है लेकिन ऐसे बहुत थोडे हैं उदाहरण देके कहते हैं जैसे सुणों ।

॥ ढाल ॥

सरसर कमल न नीपजै, बन बन अगर न होय ॥ भ० ॥ घरघर सम्पति न पामिये, जन जन पंडित न होय ॥ भ० ॥ दृढ ॥ ४ ॥ गिरिवर गिरिवर गज नहीं, पौल २ नहीं प्रासाद ॥ भ० ॥ कुसुम कुसुम परिमल नहीं, फल फल मधुर न स्वाद ॥ भ० दृढ ॥ ५ ॥ सवहि खांन हीरा नहीं चन्दन नहीं सब बाग ॥ भ० ॥ रत्न रासि जिहां तिहां नहीं, मणिधर नहीं सब नाग ॥ भ० ॥६॥ सवहि पुरुष शूर नहीं, सगला नहीं ब्रह्म-चार ॥ भ० ॥ नारी नहीं सर्व शु-लक्षणी, विरला गुण

भंडार ॥ भ० दृढ० ॥ ७ ॥ सगला गिर सुवरण में नहीं, नहिं कस्तूरी ठामों ठाम ॥ भ० ॥ सबही सींप मोती नहीं, केशर नहीं गांमो गांम ॥ भ० दृढ० ॥ ८ ॥ सब नैं लब्धि न ऊपजै, सघला मुक्ति न जाय ॥ भ० ॥ सघला सिंह न केशरी, साधू किहां २ जमात ॥ भ० दृढ० ॥ ९ ॥ तीर्थंकर चक्रवर्त्तनी, पदवी बडी पिछांण ॥ भ० ॥ सघला जीव पांमें नहीं, तिम पण समकित जांण ॥ भ० ॥ दृढ सम· कित घर थोडला ॥ १० ॥

भावार्थ ।

सरोवर द्रह तलावादि सब ही में कमल सहश्रदल तथा सामान्य कमल नहीं होते ॥ १ ॥ सब वनोपवन वगीचोंमें अगर वृक्ष कृष्णागरादि महा सुगंधी वृक्ष नहीं होते ॥ २ ॥ सब ही गृहस्थों के घरमें सम्पत्ति कहिये ऋद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥ सब ही मनुष्य पंडित यानें सत्यासत्य जाननें वाले नहीं होते ॥ ४ ॥ सबही पर्वतोंमें हाथी नहीं होते ॥ ५ ॥ दरवाजे २ ऊपर महलायत नहीं होती ॥ ६ ॥ सर्व जातिके पुष्प सुगंधित नहीं होते ॥ ८ ॥ संपूर्ण जातिके फल मधुर नहीं होते ॥ ९ ॥ सबही खांनोंमें हीरकादि बहु मूल्य उत्तम रत्न नहीं होते ॥ १० ॥ सब वनोंपवनमें चन्दनका वृक्ष नहीं मिलता ॥ ११ ॥ बहुमूल्य रत्नोंकी राशि सर्वत्र नहीं होती ॥ १२ ॥ सर्व सर्प मणिधर नहीं होय ॥ १३ ॥ सबही पुरुष सूरवीर यानें सर्व

कुशल नहीं होसकते ॥ १४ ॥ सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य धारी नहीं होते ॥ १५ ॥ सर्व स्त्रियां सुलक्षणी नहीं होती ॥ १६ ॥ सब ही गुणवान नहीं होते गुणी विरले ही होते हैं ॥ १७ ॥ सर्व पर्वत सुवर्णमय नहीं ॥१८॥ जगह जगह कस्तूरी नहीं होती ॥ १९ ॥ सब ही सीपोंमें मोती नहीं ॥ २० ॥ ग्राम ग्राममें केशर नहीं ॥ २१ ॥ सबही तपस्वी लब्धि धारक नहीं होते ॥२२॥ सब प्राणी मोक्ष नहीं जाते ॥ २३ ॥ केशरीसिंह सबही नहीं होते ॥ २४ ॥ मंडल और जमातों में सब साधू नहीं होसकते ॥ २५ ॥ तीर्थङ्कर चक्रवर्त्ति की पदवी सब जीव नहीं पासकते ॥ २६ ॥

ऐसे हीं सब जीवोंको सम्यक्त्व रूपी महा अमोल्य रत्नकी प्राप्ती नहीं हो सकती सम्यक्त्व का पाणां तो महा मुश्किल है,

॥ ढाल ॥

नवोंही पदारथ मांहिलो ऊंधो, सरधै ज्यो एक ॥ भ० ॥ तोहि मिथ्यात्वी मूल गो, भूला भरम अनेक ॥ भ० हद० ॥ ११ ॥

भावार्थ ।

जीव चेतना लक्षण १, अजीव अचेतना लक्षण २, पुन्य शुभ कर्म ३, पाप अशुभ कर्म ४, आश्रव पुण्य पाप का कर्त्ता ५, सम्वर अशुभ कर्मों का रोकता ६, निर्जरा अशुभ कर्म को बिखेर कर आत्म प्रदेशों को उज्वल करनां ७, बन्ध

शुभ अशुभ कर्म का बन्ध ८, मोक्ष शुभाशुभ कर्मों से सर्वतः छुटकारा ९, इन नव पदार्थों में ८ आठकों यथार्थ सरधे और १ एक पदार्थ कों शङ्का सहित सरधे तो भी मिथ्यात्वही है, अनेक जीव भ्रमसें भूलरहे हैं, मिथ्यात्वी १० पूर्व सें किंचित कम तक पढ़ जाते हैं, लेकिन सम्यक्त्व नहीं स्पर्शते मिथ्यात्वी हीहैं,,

॥ ढाल ॥

दशों ही मिथ्यात्वमांहिलो, बाकीरहै कदा येक ॥ भ. ॥ तोही गुणठाणों पहलो कह्यो, समझो आंण विवेक ॥ भ० द्रिढ ॥ १२ ॥

भावार्थ।

जीवको अजीव सरधै तो मिथ्यात्व १, अजीवको जीव सरधै तो मिथ्यात्व २, धर्म को अधर्म सरधै तो मिथ्यात्व ३, अधर्म को धर्म सरधै तो मिथ्यात्व ४, साधूको असाधू सरधै तो मिथ्यात्व ५, असाधू को साधू सरधै तो मिथ्यात्व ६, मार्ग कों कुमार्ग सरधै तो मिथ्यात्व ७ कुमार्ग को मार्ग सरधै तो मिथ्यात्व ८, मुक्तिको अमुक्ति समझै तो मिथ्यात्व ९, अमुक्तिको मुक्तिसरधै तो मिथ्यात्व १०, यह दश प्रकार के मिथ्यात्व श्रीठाणांगसूत्रके दशमें ठाणेमें कहे हैं, उन में सें नव बोलों को सत्य और एक को असत्य सरधै तो भी प्रथम गुणस्थानीहीं है इसी लिये हे भव्यजनो विवेक को हृदयमें ल्याके समझो,

॥ ढाल ॥

नवतत्व ऊंलख्यां बिनां, पहरै साधूरो भेख ॥ भ. ॥ समझ पडै नहिं तेहनैं, भारी हूवै विसेख ॥ भ. द्रिढ ॥ १३ ॥ लीधीटेक छोडै नहीं, कूडो करै पक्षपात ॥ भ. ॥ कुगुरांरा भरमाविया, बहुला बूडा जात ॥ भ० द्द० ॥ १४ ॥

भावार्थ

नव तत्व को जांणे विनां कई मनुष्य साधूका वेश पहर कर साधू बनजाते हैं लेकिन उनको साधूके आचार क्रिया शास्त्र वचनूं की समझ नहीं पडती सिर्फ भेषधारी द्रव्य साधू हैं, रजोहरण चद्दरपात्रादि साधूका भेष अनन्त वार ग्रहण किया और गौतम स्वामी जैसी क्रिया मित्थ्यात्व पनेमें करके ग्रैवेक कल्पाती तक अनन्तीवार जीवमापहुंचा परंतु कुछ भी मोक्ष फलितार्थ न हुवा ।

मोहवश मित्थ्यात्व के रागमें जिस खोटे पक्षको पकडलिया फिर उसकों न छोडनां इस का कारण कुगुरु सेवनां हीं है जैसे नीति शास्त्रमें भी कहा है यतः ।

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि शतोभिरित्यादिक ज्यो कहा है कि यह १०० सो आदमी जिस बातको कहे उस वक्त सत्पुरुषों की मति यांने बुद्धि दोलायमान याने चंचल चपल बुद्धि से समुद्रमें भ्रमर की तरह भ्रममें पड कर संसार समुद्रमें बहुत

से हूवते हैं इसमें निरयों का मार्ग केवल शिव मार्ग है सो कहते हैं कि—

॥ ढाल ॥

दांन शीलतप भावनां शिवपुर मारग च्यार ॥ भ० ॥ दांन सुपात्र जान्यां विना नहीं सरै गरज लिगार ॥ भ० हृद० ॥ १५ ॥

भावार्थः

सुपात्र दान १ ब्रह्मचर्य २ उपवासादि तप ३ और निर्मल याने शुद्ध भावना ४ यह च्यार शिव कहिये मोक्षके मार्ग हैं, इसमें जो पहले सुपात्र दान कहा है, उनको यथार्थ समझे विना अर्थात् पहले तो सुपात्र का जानना, सुपात्र किसे कहते हैं, कि ज्यो प्राणि मात्रको किसी तरह बाधा न उपजावैं, उन हीं सुपात्रोंको दान कैसा, किस तरह, किस भावसें देणां, और देणेसें क्या फल प्राप्ती होती है इत्यादि सब बातोंका समझे विनां कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, इसी लिये कहा है—

॥ ढाल ॥

नव तत्व सूधा धारियां, छूटै दसों ही मिथ्यात्व ॥ भ० ॥ समकित आवै इणविधै, मांनूं सूत्रनी वात ॥ भ० हृद० ॥ १६ ॥

भावार्थ ।

इस लिये कहना है प्रियवरो नवतत्वकी शुद्ध याने यथार्थ धारणा होनेसें ज्यो दश प्रकार के मिथ्यात्व हैं उनकों त्याग करना, मिथ्यात्व के त्यागेसें ही सम्यग्दर्शनका लाभ होता है ऐसा सूत्रोंमें कहा है सो वचन मानूं सांही कहा है ।

॥ ढाल ॥

देव गुरू मिश्रमानें नहीं, मिश्र न मानें जिन धर्म ॥ भ० ॥ यां तीनानें जानें निर्मला, मिथ्यों तिणारो भर्म ॥ स० ढ० ॥ १७ ॥

भावार्थ

देव १ गुरू २ धर्म ३ यह तीनों शुद्ध अर्थात् निर्मल गुण संयुक्त हो, देव श्री अरिहन्त संपूर्ण ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण सहित, गुरू निर्ग्रंथ शुद्ध साधू पंच महाव्रतधारी, धर्म शुद्ध जिनाज्ञामय अहिंसा संजम तपादिक, ये ज्यो तीनों है सो सदा सर्वदा निर्मल है, गुण अवगुण सहित मिश्र नहीं है सावद्य निरवद्य मिलके मिश्र नहीं है, कदापि मिश्र नहीं होसक्ता सो कहा है ।

॥ ढाल ॥

समकित आयां नींपजै, साध श्रावक नों धर्म ॥ भ० ॥ शिव रमणी वेगा वरो, टूटै आठोंही

कर्म ॥ भ० दृढ़० ॥ १८ ॥ समकित विन सुध पालियो, अज्ञान पणों आचार ॥ भ० ॥ नवग्रैवेक ऊंचोगयो नहीं सरी गरज लिगार ॥ भ० दृढ़० ॥ १९ ॥

भावार्थ।

सम्यक्त्वके पानेसें साधु श्रावक का धर्म होता है इसलिये सम्यक्त्व १ चारित्र २ दोनूं धर्म होणेसें मुक्ति मयी ज्यो स्त्री है वो प्राप्त होती है, और अष्ट कर्म क्षय होते हैं सम्यक्त्व विना संजमकी शुद्ध क्रिया पालन कर जीव नवग्रैवेयक स्वर्ग तक गया परन्तु कुछ गरज नहीं सरी, मिथ्यात्वी ही रहा।

॥ ढाल ॥

पाखंडियारी संगत करै, जिण लोपी जिनवर आंण ॥ भ०॥ समकित जाय शङ्का पड्यां, नन्दन मणियारा जिम जांण ॥ भ० दृढ़० ॥ २० ॥

भावार्थ।

समकित पाके दृढ़ता रखना अति दुर्लभ है बाहर क्रिया पालने वाले वेषधारी द्रव्य लिङ्गी मानूं इस समकित मयी रत्नके लुटेरे हैं, उन पाखंडियों की संगत से सम्यक्त्व रूप अमूल्य ऋद्धिका विनाश होता है पाखंडियों की संगत करने की आज्ञा नहीं है, ज्यों सम्यग्दृष्टी पाखंडियों का संग परिचय करता है वोह

जिनेश्वरकी आज्ञाको लोपते हैं उसका परिणाम खराब है जिन वचनों में शङ्का कँखा उत्पन्न होती है और समकित पाना दुर्लभ होजाता है, जैसे नन्दन मणियार पाखंडियों की संगति करके समकित खोयकर तिर्यंच गतिपाई उसका अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र १३ मां अध्ययनमें विस्तार पूर्वक हैं, इसी अवसर्पणी के चतुर्थ कालमें मगधदेशान्तर्गत राजगृही नाम नगर था वहां श्रेणिक नाम महाप्रतापी और न्यायशील नरपति था उस नगर में एक धनाढ्य सेठ नन्दन मणिहार था एकदा उस राजगृही नगरीके निकट ईशानकूणमें गुणशिल नामा बागथा वहां भगवन्त श्रीमहावीर स्वामी पधारे तब नगरीके बहुत लोग बन्दना नमस्कार करने व्याख्यान सुननें गये नन्दन सेठ भी गया और यथा योग्य जगहे देख बैठा भगवन्तकी बानी सुननें लगा भगवन्तनें लोकालोकके भाव प्रकासे संसारको अनित्य और असार कहा साधु श्रावक धर्म बताया तब नन्दन सेठ सुनके असन्त हर्षित हुआ प्रतिबोध पाया और श्रीभगवानसें द्वादस विध श्रावक धर्म अंगीकार किया वन्दना नमस्कार करके अपने घर आया प्रिय धर्मी और दृढ़ धर्मी हुआ सामायक पोषह प्रति क्रमणादि श्रावक धर्म करता रहा भगवन्त विहार कर जनपद (देशों) में विचरे पीछेमें श्रावक नन्दननें पाखंडी हीनाचारियों की संगतमें सम्यक्त्वके पर्यवों को हीनकर मिथ्यात्व के पर्यव बढाये जिन वचनोंमें शङ्का कँखा उत्पन्न हुई एकदा जेष्ठमासमें तीन उपवास कर पोषधशालामें पोषध करता था रात्रीके समय धर्म जागरण करते करते असन्त पाणीकी पियासालगी तब विचारनेलगा धन्य है उन पुरुषों को जिन्होंनें कूवा बावडी तलाव

कराये और कराते हैं वोही नीव मनुष्य जन्म सफल कर रहे हैं तो मैं भी प्रातःकाल सूर्योदय होनेसें पोषध पारकर राजा श्रेणिक के पास बहुमूल्य भेटणा लेकर जाउं और राजाकी इजाजत ले नगर बाहर ईशानकूण में विबाहगिर पर्वतके पास नन्दापुष्करणी बनाऊं ऐसा विचार कर सूर्योदय होनेसें पोषह पार बहुमूल्य भेटणा लेकर गया और राजा श्रेणिकसें जमीन की परवानगी ले अपनी इच्छा माफिक बडाभारी बाग बनाया बागके मध्य भागमें नन्दापुष्करणी बनाई और उसके च्यारों तर्फ विशाल मकानात बनाके बहुतलोगोंके आरामके लिए औषधालय १ भोजनालय २ मंजन, स्नानालय ३ दानशाला ४ बनवाके अनेकों को साता उपजाने लगे और अनेक वैद्य पुत्रों को उपस्थित किया लाखों रुपयोंका खर्च लोगोंके आरामके लिए करता रहा बहुत लोग नन्दनकी प्रशंसा करनेलगे और कहने लगे मनुष्य जन्म सफल तो नन्दन सेठका है ऐसा सुनके नन्दन भी बहुत राजी होता रहा, एकदा समय नन्दन मणिहारके शरीरमें १६ प्रकारके रोग उत्पन्न हुए अत्यन्त वेदनासें पीडित हुआ अनेक वैद्य आये बहुत औषधियां करी किन्तु रोग न गया मरण समय कालकर अपनी बनाई हुई नन्दापुष्करणी में मींडकपणें उत्पन्न हुआ मनुष्य जन्म खोके तिर्यंच गति पाई, बगीचे में लोग आवे तब नन्दनकी प्रशंसाकरें कहैं मनुष्य जन्म सफल नन्दननें किया है ऐसा लोगोंके मुखसें सुनके मींडक सोचने लगा नन्दन कौन था ये क्या बात है ऐसा विचारनें और ईहापोह देनेसें मींडकको जाति स्मरण ज्ञान हुआ तब अपना पिछला भव देखा देख कर विचारणे लगा अहो इति आश्चर्य

कर्मगति विचित्र हैं मैं कौन था और अब कैसा हूं मैं था एक वडाभारी प्रभाविक पुरुष और द्वादश व्रतधारी श्रावक लेकिन पाखंडियों की संगतिमें समकित और देशव्रत गमाकर अब मींडक हुआ हूं तो अब द्वादश व्रत अंगीकार कर तपस्या करके कर्म काट आत्म कल्याण करूं, ऐसा विचारके व्रत धारण कर तपस्या करने लगा बेले २ पारणा करने लगा अनेक कष्ट सहन कर कालक्षेप करता रहा, एकदा राजगृही नगरीके बाहर गुणशिल नामा बागमें श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर स्वामी पधारे पर्षदा वन्दनें गई उस समय पुष्करणी के नजीक लोगोंसें भगवदागमन की खबर सुनके मींडक अत्यन्त खुश हुवा पुष्करणी सें निकल भगवन्त को वन्दनें जाते रास्तेमें राजाश्रेणिक के घोडेके पैरके नींचे आगया, तब जाने आनेको असमर्थ हुवा तब एकान्त होकर शुभ भावना भानें लगा भगवन्तको नमस्कार कर विचारने लगा हे प्रभो आप सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो, मुझे आपका शरण है और मुझे आपकी साक्षीसें यावत् जीवित पर्यंत च्यारों प्रकारके आहार भोगनेका त्याग है, ऐसा कहके अपणे पाप कर्मोंकी निन्दा करता हुवा च्यारगति चौरासी लक्ष जीवा योनिको खमाता हुवा काल समय मरण पाके प्रथम देवलोक में दर्दुर नामा विमानमें ४ पल्यकी स्थितिमें उत्पन्न हुवा, देव संवंधी आयुष्य और भवक्षय कर महा विदेहक्षेत्रमें धनाढ्य के घर जन्म ले वाल भावनिवृत्त कर दीक्षा अवसरसें दीक्षा ले तप कर केवल ज्ञान पाकर सकल कर्मक्षय कर मुक्तिजावेगा, ये अधिकार विस्तार पूर्वक छट्ठाअंग श्रीज्ञातासूत्रमें हैं।

अब न्यायाश्रयी और मोक्षाभिलाषी जीवोंको विचार

करनां चाहिए नन्दन मणिहार की समकित कैसें गई ? सूत्रमें खुलासा पाठ है पाखन्डी हीनाचारियों की संगतिसे सम्यक्त्व के पर्यायहीन हुए और मिथ्यात्वके पर्याय बढे, यदि संसारी जीवोंको साता उपजानें सें जिनप्ररूपित धर्म होयतो समकित कैसें जासक्ती है और नन्दन तिर्यंचगतिका वन्धन क्यों करता "किन्तु नहीं नहीं कदापि नहीं" जिन आज्ञा वाहरका कर्तव्य सें कदापि धर्म नहीं होता, आपसमें खाना खिलाना साता उपजानादि कार्य संसारी व्यवहार है मोक्ष मार्ग नहीं है, श्री सुयगडांग के अध्ययन चौथा उद्देसामें कहा है सातादीयां साता होय ऐसी प्ररूपणा वाला आर्य मार्ग सें अलग, समाधिसें विमुख, जिन धर्मकी निन्दा करण हार, थोडे सुखके लिए वहुत सुखों का हारने वाला, असत्य पक्षी, अमोक्ष का कारण, और लोह वणिक की तरहें वहुत पश्चात्ताप करेगा, तथा कहा है दान की प्रशंसा करनां प्राणी जीवों का वध याने प्राणघात को वांछनेवाला है और मनां करने सें अंतराय है, इस लिये शुद्ध साधू तो वर्तमान समय दाना न कहैं, और जैसा धर्म जिनेश्वर देवोंनें कहा है उसीका उपदेश और आदेस दे ज्ञान दर्शन चारित्रादि ज्यो मुक्ति मार्ग अध्ययन श्रीउत्तराध्ययन में कहा है वैसाही कहै तथा जिनाज्ञा वाहर कदापि धर्म नहीं समझे उसही का नाम दृढ सम्यक्त्व है ।

॥ ढाल ॥

कामदेव अराणिक जिसा, श्रावक दशूंही वखाण ॥ भ ॥ देव डिगाया नहीं डिग्या, निःशंक रह्या दृढ-

जाणु ॥ भ ॥ दृढ ॥ २१ हाडमज्जा रंगी जेहनी, रुचिया प्रवचन सार ॥ भ ॥ अरिहन्त वचन अंगी करै, धन्य त्यांरो अवतार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २२ ॥ ज्ञानदरिशन चारित्र तप बिना, धर्म न जाणू लिगार ॥ भ ॥ इम सांभल नर नारियां, मनमें कीज्यो विचार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

कामदेव और अराणिक आदि दश श्रावक भगवन्त श्री महावीर स्वामी के प्रिय धर्मी औदृढ धर्मी हुए हैं जिनका अधिकार श्री उपासग दसा सूत्र में है उनको अनेक कष्ट हुए हैं देवतावों नें परीक्षा निमित्त उपसर्ग दे के धर्म छुडा ने के प्रयत्न कीए हैं तथा किसी को स्त्रोने उपसर्ग दीया है परंतु ज्यो निःस्नेही दृढ धर्मी श्रावक थे वो धर्मसें चले नहीं तथा मोह अनुकम्पा नहीं की जिन की प्रशंसा स्वयं भगवानमें की है, और ज्यो वचानें के लिए खडे हुए, और देव गुरुसमान माता को मारने वाले को पकडनें लगे उनका पोषद भंग हुवा ऐसा उपासक दशा में कहा है, इस ही लिए कहनां है।

हे महानुभावो पक्षपात छोड कर विचारो स्वामी भीखनजी नें कैसा मुक्ति मार्ग कहा है ज्यो जिनेश्वर देव नें कहा वोही या और कोई दूसरा ? यदि वो ही कहा है तो हीनाचारीयों के कहने सें स्वामी के निन्दकमतवनो, अगर ज्यो अपनी आत्मोन्नती करनां चाहते हो तो येक वार स्वामी कृत ग्रंथ ढाल स्तवन पढो उनका भावार्थ समझो, पंच आश्रवद्वार और अठारह पापस्थानकसेने सेवाने और अनुमोद नें में भगवंत नें एकान्त

पाप ही कहा है हिन्सा करने में कदापि धर्म नहीं होता, जैसा अपनें को कष्ट होय वैसा दूसरे जीवों को भी होता है चलते हिलते ही जीव नहीं हैं संसारमें भगवत नें ६ प्रकारके जीव बताये हैं-पृथ्वी १ पांणी २ अग्नी ३ वायु ४ वनस्पती ५ त्रस ६ जिसमें पृथ्व्यादि पांचों कायों का विनास कर सिर्फ त्रस जीवों को साता देने में धर्म कैसें हो सक्ता है यदि कोई कहे हमारे परिणामतो साता देने के हैं वो अच्छे ही हैं तो वोह उनकी भूल है अज्ञान है, ज्ञानी पुरुष तो छहुं काया को मारने में एकान्त पाप कहा है जीव मारनें सें पुन्य बंध नहीं कहा है ऐसा ज्ञान होना चाहिए उक्तं च० "पढमंनाणं तवोदया" याने पहले ज्ञान और पीछे दया कही है, तात्पर्य यह है के पहले जीव अजीव पुन्य पापादि नवों पदार्थों का जान पना चाहिए, जैसा असंख्यप्रदेशी जीव त्रस में है वैसा ही स्थावरमें है जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य पर तलवार लेकर गला काटते समय विचार करें के मेरा परिणामतो मारने का नहीं है सिर्फ तलवार की परीक्षा करने का है तो क्या उसको मनुष्य मारने का पाप नहीं लगेगा, वैसे ही कोई कहे हमारे परिणाम तो एकेन्द्री जीवों को मारनें का नहीं है सिर्फ त्रस जीवों को साता देनें का है, तो क्या ज्ञानी पुरुष उसें अच्छा समझ सक्ते हैं नहीं नहीं कदापि नहीं शास्त्रमें तो कहा है "एह नाणीणंसारं जं ण हिन्सही किंचियं" ज्ञान पानें का सार तो यही है ज्यो किंचित मात्र भी कीसी जीवों की हिन्सा न करै और न धर्म समझें, जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है वोही कर्त्तव्य करनें करानें और अनुमोदनें में धर्म है बाकी सब संसारी व्यवहार है, धर्म पुन्य नहीं, ऐसी ही प्ररूपन स्वामी भीखनजी नें की है ।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

॥ दोहा ॥ आज्ञा श्री अरिहन्तनीं, निर्वद्य दान में जांण ॥ सावद्य दाननें स्थापनें, मूरख मांडी तांण ॥ १ ॥ मिश्र धर्म प्ररूपनें, नहीं सूत्र नों न्याय ॥ लोकांनें गेरै फन्द में, कूडा चोज लगाय ॥ २ ॥ अव्रत आश्रव में कह्यो, श्रीजिन मुख सें आप ॥ सेयां सेवायां भलो जाणियां, तीनूं करणां पाप ॥ ३ ॥ व्रत धर्म श्रीजिनकह्यो, अव्रत अधर्म जांण ॥ मिश्र मूल दीसे नहीं, करै अज्ञांनी तांण ॥ ४ ॥

भावार्थ ।

प्रिय पाठको ज्ञान नेत्रों द्वारा देखो श्री अरिहन्त महाराज की आज्ञा निर्वद्य दान में है, सावद्य दान में आज्ञा नहीं है, और जिहां श्री अरिहन्तों की आज्ञा है वहां हीं धर्म है, लेकिन मूर्ख लोक लोकों से मिलती प्ररूपना करके सावद्य दान को स्थापते हैं याने सावद्य दान देने दिलानें में जिन प्ररूपित धर्म समझ रहे हैं कहते हैं जीवों की हिन्सा हुई तथा आज्ञा बाहर का कार्य कीया वो पाप है, और साता उपजाई वोह धर्म है, इस रीत से दोनूं मिल के मिश्र हुवा, इस तरहें उपदेश देके भोले लोकों को फन्द में गेरते हैं अनेक द्रस्टान्त देते हैं लेकिन येह नहीं सोचते के दान लेने वाला अव्रती है या सर्व व्रती ? यदि अव्रती है और उसें वो लीया हुवा दान भोग नें से अव्रत पुस्ट

होगी या व्रत अगर अव्रत सेता है तो अव्रत सेवाने वाले को धर्म कैसे होगा, श्री जिनराज नें तो अव्रत आश्रव कहा है, अव्रत आश्रव द्वारा पाप का वन्ध कहा है, अव्रत सेयां सेवा यां भलोजाणीयां एकान्त पाप है, तीर्थंकरों नें व्रत धर्म कहा है और अव्रत को अधर्म कहा है, किन्तु व्रत अव्रत दोनू मिलके मिश्र नहीं कहा है, जिस को व्रत अव्रत का ज्ञान नहीं है वो मूर्ख लोक पक्ष में पड़के व्यर्थ तांण यानें जिद्द करते हैं, देखो भगवान नें अठारह पाप कहा है सो किञ्चित सेने सेवाने से और भला जाणनें में धर्म नही हैं, ।

॥ ढाल ॥

जिन भाख्या पाप अठार, सेयां नहीं धर्म लिगार, शंकामत आणज्यो ए ॥ सांची करि जाणज्यो ए ॥१॥ ज्यो थोड़ो घणों करै पाप, तिणथी होय संताप, मिश्र नहीं जिन कह्यो ए ॥ सम दृष्टी सरधीयो ए ॥२॥ केई कहै अज्ञानी येम, श्रावक पोषां नहीं केम, भाजन रतनां तणों ए ॥ नफो अति घणों ए ॥३॥ तिणरो नहीं जाणें न्याय, त्यानें किम आणींजेठाय, बैधो घालीयो ए ॥ झगडो झालीयो ए ॥४॥ हिव सुणज्यो चतुर सुजाण, श्रावक रतनां री खान, व्रतां करि जाणज्यो ए ॥ उलटी मत जाणज्यो ए ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

प्राणाति पात १ (जीवहिंसा) मृषावाद २ (झूंठ बोलना) अदत्ता दान ३ (चोरी करना) मैथुन ४ (कुशील सेना) परिग्रह ५ (द्रव्य रखना) क्रोध ६ (क्रोधकरना, मांन ७ (अभिमान, दर्पकरना) माया ८ (कपटाई करना, धूर्तता) लोभ ९ (धनकी लालसा इच्छा,) राग १० स्नेहकरना) द्वेष ११ (परायेका बुरा चिन्तना) कलह १२ (लड़ना झगड़ना) अभ्याख्यान १३ (झूंठवार्ता कहना) पिसुन १४ (चुगली करना) पर परिवाद १५ (परायेकी निन्दाकरना) रति अरति १६ (मनसा माफक वस्तु पे खुसहोना और अनिछित वस्तु पे नाराजहोनां) माया मृषावाद १७ (कपट सहित झूंठबोलना) मिथ्या दरिशन शल्य १८ (मिथ्या शरधनां) ये अठारह पाप कहे हैं जिनें सेवनेंसे किंचित् मात्र धर्म नहीं है ये सत्य जानना चाहिए इसमें जराभी शंका नहीं रखना इन अठारों पापों में से थोडा या वहोत पापकरै वो संताप दायक है यदि थोड़ा करै थोड़ा दुखः दायक है और वहोत करै वहोत दुखः दायक है, किन्तु ये नहीं होसकता के वहोत करे वो पाप, और थोड़ाकरे वो धर्म; जिनेश्वर नें येह नहीं कहा, अगर थोड़ा पाप करने सें ज्यादह धर्म होतो थोड़ा पाप करलेना चाहिये या पाप और धर्म दोनूं मिलकर मिश्र होता है कदापि मिश्र नहीं एसा शरधना सम्यक द्रष्टीके लक्षन है, केई अज्ञानी कहते हैं श्रावक को च्यारूं आहारों सें पोषना चाहिए क्योंके श्रावक व्रतमयी रत्नों की खान है यानें भाजन है उसें खिलानें सें वहोत नफा है, श्रावक भोजन करके व्रत

पच्चखान करेगा तो जिमानेवालेको भी उसका हिस्सा आवेगा इसलिए श्रावक को खिलाना धर्म है ऐसी कहते हैं, किन्तु ये नहीं विचारते श्रावक आहार कीया सो व्रत या अव्रत है यदि अव्रत ऐसाहै तो सेवाने वालों को धर्म कैसे होगा, यो व्रत सेता है सो रतनहै या अव्रत सेता है सो रतन हैं। उस के पास व्रत मयी रतन है या अव्रत मयी ऐसा विचारना आवश्यक हैं अब द्रृसान्त कहते हैं।

॥ ढाल ॥

कोई रूंख वागमें होय, आम्ब धत्तूरो दोय, फल नहीं सारखा ए ॥ कीज्यो पारखा ए ॥ ६ ॥
आम्बा सूं लिव ल्याय, सींचे धत्तूरो आय, आसा मन अति घणीं ए ॥ आम्ब लेवण तणीं ए ॥ ७ ॥
आम्ब गयो कुमलाय, धत्तूरो रह्यो दिढाय, आवी नें जोवे जरें ए ॥ नयणां नीर भरे ए ॥ ८ ॥
इण द्रष्टान्ते जाण, श्रावक व्रत आम्ब समान, अंव्रत अलगी रही ए ॥ धत्तूरा समकही ए ॥ ६ ॥
सेवावे अव्रत कोय, व्रतां सामों जोय, ते भूला भरम में ए ॥ हिन्सा धर्म में ए ॥ १० ॥ अव्रत सें बंधे कर्म, तिणमें नहीं निश्चै धर्म, तीनूं करण सारखा ए ॥ विरला पारखी ए ॥ ११ ॥ खाधां बन्धें

कर्म, खुवायां मिश्र धर्म, ए झूंठ चलावीयो ए ॥ मूरख मन भवियो ए ॥ १२ ॥ मिश्र नहीं सा ख्यात, ते किम शरधी जे बात, अकल नहीं मूढ में ए ॥ पड़िया रूढ में ए ॥ १३ ॥ पोतै नहीं बुद्धी प्रकास, बलि लाग्यो कुगुरांरोपास, निर्णय नहीं करै ए ॥ तेभव सागर परै ए ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

जैसैं किसी बागमें आम्ब और धत्तूरे दोनूं तरह के दरखत हैं किन्तु उनके फल एकसा नहीं हैं, कोई मूर्ख मानव धत्तूरे को आम्र का दरखत समझकर पानी देने लगा, और आसा करनेलगा ऋतुसमय मुझें यह वृत्त बोहोत मिष्ट आम्ब देगा ऐसा खयाल सें हमेसां धत्तूरे को पानी आम्ब का वृत्त समझकर देता रहा तब आम्ब वृत्त सूखगया और धत्तूरा प्रफुलित होगया, कितनेक समय बाद धत्तूरा के समीप आके आम्र देखने लगातो येकभी नहीं मिला तो अत्यन्त दुःखित होके रोने लगा, इस दृष्टान्ति करके बुद्धि मानो को समझनां चाहिए आम्ब समान व्रत और धत्तूरा समान अव्रत है, तब व्रतकी आसा सें अव्रत सेंने सेवाने सें व्रत मयी आम्र फल कैसें होगा-अव्रत सेवानें सें तो अव्रत रूप धत्तूरा फल की प्राप्ती होगी, अव्रत सेने सेवानें में तो अशुभ कर्म का ही बन्ध होगा, श्रावक के त्याग है वो व्रत हैं, जिस सावद्य कार्य का त्याग नहीं हो वो अव्रत है, पर दोनूं मिलके मिश्र ऐसा नहीं,

होसकता अव्रतका सेना वो प्रथम करण, सेवाना वो दूसरा करण, सेतेहुएको अच्छा समझना ए तीसरा करण हैं, जिस कर्त्तव्य सें पापकर्म प्रथम करण सें लगता है तो द्वितीय और त्रीतीय करणसें धर्म ए कैसें होसकताहै, खानेवालोंको पापें, और खिलाने वालों को धर्म, ऐसी मिथ्या प्ररूपणा वाला मूर्प और अजान लोगों को अच्छे लगरहे हैं, उन निर्बुद्धीयों को स्वयंतो बुद्धिमयी प्रकाश नहीं, और कुगुरुवों को मिथ्या शरधामयी जालमें फसके भवभ्रमणरूप कूवा धाने कूपमें पड रहे हैं।

॥ ढाल ॥

साधू संगति पाय, सुणे येक चित्त लगाय, पक्षपात परिहरे ए, ज्यों खबर वेगी परे ए ॥ १५ ॥ आनन्द आदिदेजाणं, श्रावक दसूं बखाण ते पडिमा आदरी ए, चरचा पाधरी ए ॥ १६ ॥ जे जे कीयाछे त्याग, आणीमन वैराग, तेकरणी निर मली ए, करीने पूररली ए ॥ १७ ॥ वाकी रह्यो आगार, अव्रत में आरायों आहार, अपणी जाति में ए, समझो इणवातमें ए ॥ १८ ॥ अव्रतमें दे दातार, ते किम उतरै भवपार, मार्ग नहीं मोखरो ए, छांदो इणलोकरो ए ॥ १९ ॥ दाता अन्न सुद्ध पाय, पात्र अव्रत में ल्याय, ते किम तारसी ए,

किम पार उतारसी ए ॥ २० ॥ उपासक उवाई अङ्ग, वलि सुयगडाङ्ग, सूत्रथी ऊधरी ए, अव्रत अलगी करी ए ॥२१॥ जूनों गूढ मिथ्यात त्यां रै किम वैस ए बात, कर्म घणां सही ए, समझ पडै नहीं ए ॥२२॥

॥ भावार्थ ॥

इस ही लिए कहना है निर्लोभी निर्ग्रंथ साधूवोंकी संगत पाके दान का अधिकार पक्ष पात को छोडकर सुनिए तब सुपात्र और कुपात्र दानका फल मालूम होजायगा, देखो आनन्दादि दस श्रावक प्रतिमा याने प्रतिग्या करी वो धर्म है और ज्यो आगार रह्या वो अधर्म है, साधूवत गौचरी करके आहार पानी अपनी जाति में से ल्याके भोगते थे वो अव्रत में है, वैराग्य भाव से ज्यो त्याग करते थे वो व्रत संवर था, तो दातार उन्हें अव्रत सेवानाया या व्रत? यदि अव्रत सेवाताथातो अव्रत सेवानें में धर्म कैसे होवेगा, और वो कार्य उन्हे संसारमयी समुद्र से पार कैसे उतार सकता है, उपासगदसा उवाई सूत्र और सुयगडां अंगमें व्रत अव्रत का निर्णय खुलासा कहाहै लेकिन दीर्घकर्मी जीव तबभी समझते नहीं हैं ।

॥ ढाल ॥

आगम नी दे साख, श्री वीर गयाछै भाख, भवियण निर्णयकरै ए, भव सायर तिरै ए ॥ २३ ॥ देई सुपात्र दान, न करै मन अभिमान, ते संसार प्रति

करै ए, शिवरमणी वरै ए ॥ २४ ॥ दानसूं तिरया अनन्त, ते भाख गया भगवन्त, ते दान न जाणीयो ए, न्याय न छाणीयो ए ॥२५॥ साधु सुपात्रे सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध दियो ए, ते लाभ मोटो लियो ए ॥२६॥ साधु सुपात्र सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध नहीं ए, वैरायां नफो नहीं ए ॥ २७ ॥ कोई मिलै मोटा अणगार, दाता अशुद्ध विचार, असणादिक शुद्ध सही ए, वैरायां नफो नही ए ॥२८॥ मिलै कुपात्र कोय, दाता अन्न शुद्ध होय, पडिलाभ्यां तिरे नहीं ए, सूत्र में इम कहीये ॥ २९ ॥ आणूं मन विवेक, तीनामें शुद्ध नहीं येक, प्रतिलाभ्यां में धर्म नहीं ए, श्रीजिन मुख सें कही ए ॥ ३० ॥ दाता अन्न पात्र विचार, तीनूं अशुद्ध निहार, तो धर्म न भाषै जती ए, झूट जाणो मती ए ॥३१॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

जिन सांप्रतागम बातें शास्त्रों में जगे जगे श्रीवीरप्रभुनें कहा है सुपात्रों को निर्दूषण दान देना यही शिव मार्ग है, बाकी लौकिक दान देना मुक्ति मारग नहीं है, लज्जादान भय दान, वगैरा दश प्रकारके दानका अधिकार श्रीठाणांगसूत्रमें है,

जिसमें अभय दान और धर्म दान यह दोनूंही संसार समुद्र सें तिरणें का उपाय है इन्हों का निर्णय भव्य जीवों को करणा चाहिए, एकेन्द्री को भय और पंचेन्द्री का पोषण करण में कदापि धर्म नहीं होसकता छटकायों की विराधना करे वो सुपात्र नहीं है, जीव हिन्सा करे झूटबोले चोरीकरै मैथुन सेवें और परिग्रह रक्खें वो तो कुपात्रहीहैं, सुपात्र तों वोंही है ज्यो येकेन्द्री आदि सव जीवों को न मारे झूट न वोलें चोरी न करै मैथुन न सेंवे परिग्रह न रक्खें, ऐसे सुपात्रोंकोही अचित और निर्दोष दान देने में धर्म है, जैन शास्त्रों में ऐसाही अधिकार है ऐसे दानसेंही धर्म है, सुपात्र दान देके अभिमान न करें तवही प्रति संसार होता है, श्रीविपाक सूत्र में सुवाहु कुमार आदि दस जणोंनें शुद्ध साधू निर्ग्रथ निरलोभी महात्मावों को दान देके प्रति संसार कीया हैं और महा पुन्योपार्जन कीया है, येही क्यों सुपात्र दान सें अनन्त जीव संसार समुद्र से तिरे हैं,, पात्र शुद्ध साधू मुनिराज, दातारशुद्ध निर्दूषण देने वाला, और वित्त शुद्ध अशणादि च्यारूं आहार, साधू के निमित्त न कीया हुवा तथा सचित्तादिक सें अलग, इन तीनों का योग मिलनेसें लाभ होता है, इन तीनूं मैं सें अगर येक भी अशुद्ध है तो कुछ फायदा नहीं होता न्यायाश्रयी को ज्ञान दृष्टी सें देखना परमावश्यक है, ज्यो समदृष्टी जिन आज्ञा वाहर धर्म नहीं समझते वो कभी जिन आज्ञा वाहर के दान सें कदापि धर्म नहीं समझ सकूने,, ।

महानुभावो क्रोधादि च्यारूं कषायों का अनुदय समय पक्षपात राहित होके खयाल करो हिन्सादि पंच आश्रव द्वार सेने सेवाने और अच्छा समझ ने में जिन प्रणीत धर्म का तो लेश

मात्रभी नही हैं, हीना चारी और निन्दकों के कहनें सें शुद्ध संयम पालनेवाले संयतीयों की निन्दामत करो, सब जीवों सें मैत्री भाव रखनाहीं परम धर्म है क्रोधकरना लडना झगडना असत आल देना और धर्मात्मावों से ईर्षा करना आदि कार्यों से तो महा पाप कर्म का बन्ध होता है, क्षमा शील संतोषादिही करनां धर्म कार्य है, अपनें सें व्रत न पलें और पालने वालों सें द्वेष रखें उसें भगवतनें श्री आचारांग सूत्र में द्विगुणां मूर्ख कहा है, इसलिए नम्रता पूर्वक ऊपर कहा और कहते हैं अगर तुम्हे इस संसार समुद्र से तरना हैं ज्यो अनादिकाल सें जीव अष्ट कर्म वर्गणा सें लिप्त है उनसें अलग होके स्वसत्ता प्रगट करनी है तो ईरषा और द्वेष को छोड कर येकवार स्वामी भीखनजी कृत ग्रन्थ पढो, जिस वीर प्रभू को भगवंत सर्वग्य मान रहे हो और उनके वचनों की पूर्ण आस्था है तो उन के वचन ज्यो अङ्ग उपाङ्ग सूत्र है वो शुद्ध साधूवों के पास सुनो, टीका कारों नें या चूर्णी कारों नें टबाकरने वालों ने ज्यो अर्थ सूत्रसें मिल ते कीये हैं उन्हे सत्य समझो परंतु किसी जगें सूत्र विपरीतार्थ कीया है उनहीं अर्थ को सत्यसमझकर हीणाचारकी पुष्टी मत करो, जिन मजहब का सारान्स जिन आज्ञा धर्म हैं, जिहां जिन आज्ञा नहीं वहां निश्चय अधर्म है उसकर्त्तव्य सें एकान्त पापकर्म का ही बन्ध है, सूत्रों में जगहें जगहें दोय धर्म कहे हैं श्रमण धर्म, और श्रमणों पासक धर्म, श्रमण धर्म तो पंचमहाव्रत मयी, श्रमणोपासक धर्म द्वादसव्रतमयी किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं कहा के श्रमण धर्म तो पंचमहाव्रत मयी है और श्रमणोपासक धर्म अव्रत अव्रतमयी है, जैसा श्रमणोपासक धर्म द्वादसव्रत रूप जिनेश्वर नें कहा है वैसा ही श्रमणोपासक धर्म श्री भिक्षू स्वा-

मी नें कहा है इस लिए कहना है यथाशक्ति द्वादसव्रतों की आराधना निर्दूषणपणें करो, और श्रमण धर्म की आराधना करणें की इच्छा रक्खो तब श्रावक कहलावोगे केवल नांम मात्र श्रावक कहलाणें सें और हिन्सा में धर्म समझ नें सें श्रावक पद ज्यो पंचम गुणस्थान हैं उसकी प्राप्ती कभी नहीं होगी।

आपका हितेच्छू और गुणवानों का दास।

श्रावक जहोंरी गुलाबचन्द लूणियाँ

जयपुर

॥ अथ द्वादशविध श्रावक धर्मः ॥

स्वामी श्री भीषनजी कृत

द्वादश व्रतों की ढालें ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणुव्रत परिवरया, तीन गुणव्रत सार ॥
शिक्षा व्रत च्यारौं चतुर, तेहनूं करो विचार ॥ १ ॥
पहिला में हिन्सा तजै, दूजै झूंट परिहार ॥ तीजै
अदत्त चौथें मिथुन, पंचमें तजे धन सार ॥ २ ॥
पहिलो गुण व्रत दिशितणूं, दूजै भोग पचखांण,
तीजै अनरथ परिहरै ॥ ये तीन गुण व्रत जांण ॥ ३ ॥

सामायक पहिलो सिखा, दूजो संवर जांण ॥ तीजो पोषध कहिजिए, चौथो साधुनै दांन ॥ ४ ॥ यां बारह वरतांतणों, कहियै छै विस्तार ॥ भाव धरी भवियण सुणों, मन में आंण विचार ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

श्रावक के बारह व्रत है, जिन में पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, च्यार शिक्षा व्रत हैं, यह ५ अणुव्रत यानें सूक्ष्म व्रत है जिसजिस भांगे सें साग करे वो आगार सहित है, इस लिए अणुव्रत, तात्पर्य देशतः श्रावक के, और साधूके सर्वतः यानें आगार रहित है इस सें पंच महाव्रत कहे हैं, मन वचन काया के तीनयोग और करणां करावणां और अनुमोदना ए तीन करण है, इन के परस्पर भांगे वनां ने से ४६ भांगे होते हैं, जिस में जैसे जैसे भांगे साग करे वह देशव्रत है आगार रक्खे वह अव्रत है, इस सें अणुव्रत कहतां छोटे व्रत हैं, वोह पांचप्रकार के हैं अहिंसा १, असत्य्या २, अदत्त ग्रहण निवर्तन ३, अब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, यह पांच अणुव्रत कहे हैं,, ।

दिशिमर्यादा १, भोग उपभोग परिहार २, अनर्थदण्ड निवृत्ती ३, ए तीनूं पंच अणुव्रतों को गुणदायक है इसी सें गुणव्रत कहे हैं।

सामायक १, कालमर्यादा सहित पंचाश्रवसाग सो संवर है २, पोषध अहोरात्रिप्रमांण पंचाश्रवकेत्याग ३, और चौथा अतिथिसंविभागव्रत ४ वो शुद्धसाधूनिर्ग्रंथको शुद्धदांन १४ प्रकार का देने सें होता है ।

यह च्यार शिखाव्रत है सर्व मिलके १२ द्वादशव्रत हैं इन का विस्तार पूर्वक वर्णन बुद्धिवांनजन विचारैं।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार ॥ एचाल में ॥ श्रावक नां व्रत बार, पालै निरअतीचार, तेह दुरगति नहीं पडैए, भवसायरतैरै ए ॥ १ ॥

भावार्थ।

उपरोक्त यह ज्यो श्रावक के द्वादश व्रत हैं उनको अतीचार रहित पाल नें वाला जीव दुर्गती में नहीं जाता और भव सायर अर्थात संसाररूप समुद्रसें तिरता है।

॥ ढाल ॥

पहिलो व्रत इमजांण, तिणमें हिंसा नां पचखांण, हिंसा त्रसतणी ए, बीजी थावर भणी ए ॥२॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरू कहते हैं समदृष्टी जीवो श्रावक का प्रथम व्रत यह है के ह्विन्सा करने का त्याग करें। वोह हिन्सा दोय प्रकार की है एक तो त्रस हिंसा, दूसरी स्थावर हिंसा, त्रस हिंसा च्यार प्रकार की हैं बेइंद्री की १, ते इंद्री २, चउ इंद्री ३, पंचेंद्री ४, जीवों को त्रिकरण, और तीन जोग सें नास करणां, और

स्थावर हिंसा पांच प्रकारकी पृथ्वी १ पानी २ वायु ३ अग्नि ४ और वनस्पती ५ यह पांच प्रकार के जीवोंको त्रि-करण और ३ योगसें मांयनास करणां, उपरोक्त दोनू प्रकारकी हिंसाका जितनां जितनां त्याग करै सो प्रथम श्रावक व्रतहै तब गृहस्थबोला ।

॥ ढाल ॥

वसतां गृहस्थावास, हिन्सा हुवै तास, आरंभ विनकरेए, पेट किम भरेए ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मैं गृहस्थाश्रम में रहताहूं हिन्सा हो रहीहै आरंभ बिना उदरपूरनां किसतरह होय इसलिए ।

॥ ढाल ॥

करूं त्रसतणां पचखांण, स्थावरनों परिमांण भेद त्रसतणांए, ज्ञानी कह्या घणांए ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

त्रसजीवों को मारनेका त्याग और स्थावरके प्रमाण उप-रान्तका मारणेका त्याग करूं किन्तु हे गुरु त्रस हिंसाकेभी अनेक भेद ज्ञानियोंनें कहेहैं एक अपराधीकी, दूसरी निरअपराधीकी

॥ ढाल ॥

कोई मूंनें घाले घात, म्हांरो अपराधी साक्षात, खमतां दोहिलोए, नहि मूंनें सोहिलोए ॥ ५ ॥

सांतो दे ने लेजाय, अथवा लूटे आय, खून करै जराए, सूस नाहिं तराए ॥ ६ ॥

॥ भावार्थ ॥

सर्वथा प्रकार त्रसहिंसाकाभी मुझसें त्यागहोनां मुश्किलहै क्योंकि कोई जीव मुझको मारनेको आया व मेरा अपराध किया वो मेरेसें नहीं खमाजाता, खमनाभी सहज नहीं है, अथवा मेरेपास द्रव्यहै उसको कोई चोर मकान फोडकर लेजाना चाहै या लूटनाचाहै वा खूनकरै तो उसें मारनेका मेरे त्याग नहीं, कारण ऐसी दृढता नहीं

॥ ढाल ॥

निन अपराधी होय, तिणरी हिन्सा दोय, मारै जांणतांए, वले अजांणतांए ॥ ७ ॥

भावार्थ।

निर अपराधी जीवकी हिन्सा भी दोय प्रकारकी है येक तो जांणके दूसरी अणजांणतें यदि अजांणके आगार रखके जांणते त्रस हिन्साका त्याग करूं तोभी निर्वाह होनां कठिनहै

॥ ढाल ॥

म्हारै धांन जोखणारो कांम, गाडी चढ जावूं गांम, खेती हल खड़ूंए, थूड निनांण करूंए ॥८॥ तिहां बहु जीवहणाय, किम पालूं मुनिराय, नहीं

सके इसोए, गृहवासै वस्योए ॥ ९ ॥ आकूटीनै त्यांग, जीवमारणरो कांम, व्रतछै जांणताए, नहीं अजाणताए ॥ १० ॥

॥ भावार्थ ॥

मेरे धांन कहतां अनाज ओसण यांने वजन करनेका कामभी है उसमें ईली घुण आदि बहुत त्रसजीवों की हिंसा है अथवा गाडी प्रमुख सवारीमें बैठके देशान्तर वा ग्रामान्तर जानां होताहै तबभी त्रसहिंसा बहुतसी होतीहै, और खेती के वखत हल चलानें वा खुड निनांणी अर्थात् धान्य सिवाय इतरघास प्रमुखको खोदनेंमें कीडादि त्रसजीवोंकी हिंसाके होनेका ठिकाणां है इस वास्तै अजाण हिंसाका भी त्याग होनां कठिनहै क्योंके गृहवासमें बसताहूं, जसाके मारनें की इच्छा सें भी अर्थात् निरअपराधी त्रसजीवोंके मारनेका त्याग करताहूं वोभी अनांण के नहीं है क्योंके।

॥ ढाल ॥

म्हारै इसडी ईर्या नाहिं, चालूं अंधारा मांहि, वस्तु जोऊं पूजूं नहींए, लेऊं मूंकूं सहीए ॥ ११ ॥

॥ भावार्थ ॥

मैं ऐसा ईर्यासुमतिवान् नहींहूं के अंधेरे में चलूं जिस समय देखदेख के चलूं अथवा पूंज पूंज के वस्तुपात्रको मेलू उठाऊं तथा देने लेने वखत वस्तु जिसकी प्रतिलेखनांकरूं,

॥ ढाल ॥

थाप लाठीरा नेम, मोसूं चाले केम, चउपद हांकणांए, दो पद हटकणांए ॥ १२ ॥ इमकरतां जीव मराय, जीव काया जुदा थाय, हणवा बुद्धि नहिं करीए, विणबुद्धे मरीए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

थाप. कहिए चांटा और लाठी यानें लकडी डंडा प्रमुखसें त्रसजीव कोंन मारणोंका व्रतभी मुझसे नहीं निभसकता कारण चतुष्पद जानवरों को हांकना वा द्विपद दास दासी प्रमुख पुत्र पौत्रादि कुटम्बको शिक्षाका कांम पडे तो मारणों पींटणे में हिंसा कदाच होजाय इसलियें नहीं निभसकता वो प्रण।

॥ ढाल ॥

हणवा बुद्धें होय, जीव न मारूं कोय, सउपयोग करीए, ऐसी विगत धरीए ॥ १४ ॥ हिंसानां पच-खांण, मैं कीधा परिमांण, जावज्जीव करीए, करण जोग धरीए ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

मारनेंकी बुद्धी करके निरपराधी त्रसजीवको उपयोग सहित मारन का त्याग जावज्जीव पर्यन्त करताहूं वो तीनकरण तीनजोगमें ४९ भांग होतहैं जिसमें जैसे २ भांगसे त्यागकीया वो प्रथम अणुव्रत है, और जिस जिस भांगे का त्याग नहीं किया वह अव्रताश्रव है,

॥ ढाल ॥

धन्य जेले वैराग, ज्यांरे सर्व हिन्सारात्याग, त्रस थावरतणीए, अनुकम्पाघणीए ॥ १६ ॥ हूं गृहस्थ मुनिराज, म्हारे आरम्भसुं काज, अव्रत बहुघणीए त्रसथावरतणीए ॥ १७ ॥ धनधन साधु मुनिराय ते सुमति सुमतें थाय, जीवें जिहां भणीए, नही चूके अणीए ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

धन्यहै उन पुरुषों को जिनके ३ करण ३ जोगसें हिंसा करनेका त्यागहै, त्रस और थावर जीवोंकी दयाहै, किसी जीव मात्रकी विराधना नहीं करतेहैं, उन महाऋषियोंका जन्म सफलहै, हे मुनिराज मैं गृहस्थाश्रममें वसताहूं मेरे आरंभकरनें का काम सदाही रहताहै चलतें फिरतें बैठतें उठते सोते खाते पीते इत्यादि कार्योंमें हिन्सा होनेका ठिकाणा है और त्रस थावरोंके हिन्साकी अव्रत बहुत है, सर्व विरती तो साधू मुनिराजहीहैं जो पांचमहाव्रत तीनगुप्ति पञ्चसमिति पालैहैं जावज्जीव पर्यंत थिर सावनसें कुशाग्रमात्र भी नहीं चूकते, उन पुरुषोंको धन्यहै।

॥ ढाल ॥

धृग धृग गृहस्थावास, म्हारे मोटो पडियो पाश हिन्सा होवें घणीए, तेह नहीं हित मो भणीए,

॥ १९ ॥ ज्ञानादि अंकुश ल्याय, मनने आणी ठाय, हिंसा टालस्यूंए, दया पालस्यूंए ॥ २० ॥ धन धन साधू शूर, ज्यां लफरा कीधा दूर, इस विध मो प्रतैं ए, चालो नहिं चलैए ॥ २१ ॥

॥ इति प्रथम व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

धृक्कार है गृहस्थाश्रम को और मेरे को ज्यो मैं ऐसे अनित्य गृहस्थाश्रम में बसरहा हूँ और स्वार्थके सगे स्वकुटुम्बियों को त्रसथावर जीवों की हिंसा मयी पास में पडिके पोप रहा हूँ, यह कर्त्तव्य मुझे हितकारी नहीं है किन्तु दुःखदाई ही है, परन्तु ज्ञानादिक अँकुश से मनोमय हाथी को अपणें ठिकाणें पर ल्याऊंगा और जिसहि दिन मेरे सर्वथा प्रकारें हिंसाका त्यागहोगा वोहीदिन मेरे परम लाभदायक होगा., अभीतो सिर्फ स्थावर और त्रसजीवोंकी हिन्साका त्याग मर्यादा उपरान्त कीयाहै वह मेरा देशव्रतहै, आगार रक्खाहै वह व्रत नहीं अव्रताश्रव है, परं जाहांतक बनें जिहांतक हिंसा टालके दया पालूंगा, धन्यहै उन साधू महात्मा शूरवीर पुरुषोंको ज्यो मोहमयी प्रवृत्ति पाशको तोडकर धर्म मार्गमें चलरहे हैं, इस प्रकारका हिसाव खाता मुझसे नहीं खतसकता, याने सर्वथा प्रकार हिन्साका त्याग मुझसें नहीं होता ।

अथ दूजोव्रत

दोहा

दूजोव्रत श्रावकतणों, करै झूठपरिमांण, त्यागै मोटो जांणनैं, पालै जिनवरआंण ॥ १ ॥ झूटा बोलां मानवी, नाहिं ज्यांरी परतीत, मनुष जमा रो हारनैं, नरकां होय फजीत ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ यानें असत्यबोलनेका प्रमाण उपरांत त्याग करैं वो श्रावकका दूसरा व्रतहै, और आगार रक्खे बोलै बोलावै बोलते को भला जांणै यह अव्रताश्रवहै उससें पापकर्मका बंध होताहै इस लिए असत्यभाषणको महा खराब और नीच कर्म समझ कर त्याग करै जिनेश्वर की आज्ञा प्रमांण सत्यवचन बोलै, झूठ बोलनेवाले मनुष्य कदाचित् सत्यभी कहै तोभी उनका वाक्यकी प्रतीति नहीं होती ऐसे जीव वृथा मनुष्य जन्म खोते हैं और नरकोंके दुःख सहन करतेहैं, हे भव्यजनों इसी लिये सद्गुरु कहतेहैं ।

॥ ढाल ॥

जिनमाप्या पाप अढार एदेशी

झूठतणां पचखांण, नांना मोटा जांण ।
पचखै मोटकाए, कांइयेक छोटकाए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ दोष प्रकारकीहै एक तो छोटी, यानें किंचित्, दूसरी मोटी अर्थात् जिस के बोलनेसें राजदंडकरे और लोकों में निन्दा हो ए द्विविध झूठ बोलने का त्याग करो ।

॥ ढाल ॥

छोटी न बोलुं केम, म्हारे गृहवासेसुंप्रेम, वियाज सौदाकरूंए, मनमें लोभ धरूंए ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

गृहस्थ कहताहै हे महाराज आपनें कहा वो वो ठीक है लेकिन में गृस्थाश्रममेंहूं छोटे झूठ के त्याग नहीं निभसकते वाणिज्यव्यापार में झूठ करनाही पडताहै कारण इसका लोभ है लोभ के वास्ते झूठ बोलनां पडता है ।

॥ ढाल ॥

मोटा पांच प्रकार, तेहनूं करूं परिहार, व्रतकरूं ऐसोए, मोसुं निभे जैसोए ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोटी झूठ पांच प्रकारकीहै उसका त्याग करसकताहूं जैसा मुझसे निभे वैसा व्रत करणां उचितहै ।

॥ ढाल ॥

किन्नाली ग्वाली जांण, तीजी भूमि पिछांण थापण मोसो करीए, कूडी साखभरीए ।

॥ भावार्थ ॥

मोटी झूठ पांच प्रकारकी है किन्नाली अर्थात् कंन्या के वास्तै १ गवाली याने गऊ भैंस प्रमुख दूधवाले ज्यांनवरों के कारण २ तीसरी भूमि कांहए जमीन मकानात वगैरहके वास्तै ३ थापणमोसा यानें किसी की अमानत चीज हजम करणां ४ कूडीसाखी को है के मिथ्यागवाही देनां ५ ।

॥ ढाल ॥

कंन्यारा भेद अपार, करणों सूंस विचार, वरसा छोटकीए, तेहने कहिये मोटकीए ॥ ५ ॥ गहली गूंगी होय, वले आंख नांहिं दोय, काणी मीमणी ए, आंख्यां चीपणीए ॥ ६ ॥ काली कोडाली नारि, कांनां न सुणैं लिगार, टूंटी पांगलीए, बोलै तोतलीए ॥ ७ ॥ रोग घणा घटमांय, जीवारी आसा नहिं कायः बोलां ज्वरो तेजरोए, आवै एकान्तरोए ॥ ८ ॥ वलेरोगछै खेन, जीवनपांमें चैन, [illegible]कपिक्तखीए, दुरगन्ध अति घणीए ॥ ९ ॥ लूंबी हूंबी होय, वादी वांबी जोय, छोटी वांफणी ए, आंख्यां मांसणीए ॥ १० ॥ हींणवन्धरी होय, तिणरी जात न जांणें कोय, आतो जावै जैठए, [illegible] न [illegible] ॥ ११ ॥ रूपरोग नै खोड, वले

बरसदे तोड, अछुतो नहीं भाखणोंए, हूवै जिमदा खणोंए ॥ १२ ॥ यां बोलांरो सांम, आयपडै कोई कांम, घरमंडै जठैए, झूंठ न बोलूं तठैए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच प्रकार के झूंठ ऊपर कहेहैं उनमें पहला (कन्यालीक) सो कन्यां के वास्ते मिथ्या बोलना वोह अनेक प्रकार के हैं इस लिये ज्यो सोगनकरै वोह विचारके करनेंसें नियमका भंग नहीं होता, अनेक भेदोंमें सें संक्षेप कहते हैं, जैसे छोटी उम्मर वालीकों ज्यादह उमरकी कहनां, अथवा कोई गहलीहो, गूंगी, आंधी, कांणी, मांजरी, आंखें चींपणीहो, काली हो, कोडाली स्त्री, वहरी, टूंटी, पांगली, तोतली बोलने वाली, महारोगणी जीविताशा विमुक्त, वेलान्तरो, तेजरो, वा एकान्तर ज्वरागमनवालीहो और महारोग जिसका नाम खैन अर्थात् क्षयी सर्व धातु बलक्षय जिस सें जीव क्षण भरभी आराम नहीं पासके, फिर रक्तपित्त रोग, कुष्टादिक जिसमें अत्यन्त दुर्गन्धहो, कुबरी ठिंगनी, तिरछी भांकनें वाली, वांकी देखनें वाली, जिसके वांफणी गल छोटी हो गईहो, जिससें नेत्र डरावणें मालुमहों, अथवा नींचवन्शकी होय जिसकी जात कोई नहीं जांनताहो वो जहांजावे वहां उसकी साख कोईभी नहीं भर सके, ऐसी अनेक तरहकी कन्यांवों के अर्थ मिथ्या यानें बुरीकों भली, वा भलीकों बुरी कहणां, तथा, रूप रोग और खोट क्या हीनेंद्री, और वूढीकों छोटी कहनां इत्यादिक असत्यका त्यागकरनां, जैसा हो वैसा कहणां, इत्यादिक बोलणे में हेस्वामी किसी समय वा कोई कार्य वससें

मिथ्या बोलनेकाही प्रसंग आपडै जैसे विवाहादिक संवन्ध में झूट बोलनां पडताहै, तो वहां कदापि त्याग करनें वालोंकों झूठ नहीं बोलणां, परन्तु

॥ ढाल ॥

हांसी मसकरी काज, म्हांरे सूंस नहीं मुनिराज
पालतां दोहिलोए, नहीं सूनें सोहिलोए ॥ १४ ॥
इत्यादिक परिमांण, में कीधा पचखांण, इमहींज
पुरुष तणीए, कन्या ज्यों भाषणीए ॥ १५ ॥

भावार्थ।

हास्य और मसकरी प्रसिद्ध है इनमें मेरे झूट बोलनेंके सोगन नहीं है इसका प्रमाणोपरान्त ज्यौं सोगन कीएहैं, वैसे ही पुरुषके वास्ते भी विचार लेणो कन्याकी तरहसे,

॥ ढाल ॥

इमही ग्वाली जांण, दूधतणों परिमांण, वैंत
न उचारणोए हुवे ज्यूंदाखणोए ॥ १६ ॥

॥ भावार्थ ॥

इसी तरह से गाय भैंस आदिके विषयमें भी अनेकप्रकार का असत्य भाषण होताहै जैसे ब्यावतका कमी बेसी तथा दूध का देणी कमी बहणां यह गवालीकहैं, श्रावकको इसकी मर्यादा के उपरांत त्याग करणां, और, जैसा, हो. वैसा, कहणां,

॥ ढाल ॥

भूमाली घरनैं हाट, बोलै वाद नैं घाट, धरती वावणा तणांए, इत्यादिक घणांए ॥ १७ ॥

॥ भावार्थ ॥

भूम्यालीक अर्थात् पृथिवी के वास्ते झूंट, मकांन दुकांन वगैरहके निमित ज्यो असत्य भाषण और खेती वगैरहमें अनेक तरह सें मिथ्या कहनां ए भूमालीकहै इसका ममाण उपरान्त त्याग करै वो श्रावक धर्म है,

॥ ढाल ॥

कोई धन सौंपै आय, हूंराखूं घरमांय, आयनैं मांगै जरांए, नटूं नहीं तरांए ॥ १८ ॥ मांगैधणीं ज्यो आय, बाप भाई नै माय, बोरो आय अडैए, राजा रोकै जरांए ॥ १६ ॥ जब झूंट बोलणरो नेम, राखूं व्रतसूं प्रेम, चोखो पालस्यूंए, दूषण टालस्यूं ए ॥२०॥ मांगै अनेरो आय, तो नटजाऊं मुनिराय, सूंसनहीं कियोए, लोभैं चित्तदियोए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

चोथी झूंट थापण मोसाका त्याग यानें अमानतमें खयानत जैसें किसीनै धन ल्याके विश्वास कर सौंप दिया घरमें मेलालिया जब उसमेलने वाले को जरूरत हुई मांगनें लेनेको आया

उस वक्त नहीं नटणां, वो खुद मालिक मांगे वा अथवा भाई मांगने आवै, चाहे मा उसकी हो, या वहारे उसके आ वैठे तब नटणा पर राज दरबारहो, राज रोक देवे, तब झूठ बोलणों का नियमहै, तो अपणा व्रतको न छोडै, सच्चा हाल ज्यो होसो कहै, शुद्ध व्रतपालन करै, सर्व दूषणको टालकर मिथ्या न बोलै वो धर्म है,

॥ ढाल ॥

साख भरावै मोय, झूठ न बोलूं कोय, ते पिण मोटकी ए, नहीं छोटकी ए ॥ २२ ॥ ज्योहूं बोलूं वाय, घर पैलांरो जाय, भापा टालणींए, पाछे बोलणी ए ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांचवीं मिथ्या कूडी साक्षी, यानें झूठी गवाही देनां, इस झूठ का भी भेद सागहै, साक्षीभी छोटी और वडी दो तरह की है, वडी तो वो है जिसके बोलनेसें राजा दंडै और लोक भंडै, एसी झूठके बोलने वालेको राजसें दंडहो और दुनियामें वदनांमहो, जिसके हाथ पैर नासिका छेदकर सजा पानेके बाद देशसें निकालतेहैं, छोटा वोके ज्यो दूसरेका नुकसान तो उस झूठ में है पर वो वदनामी और वह वडी सजा जिसमें नहो अथवा हास्य कुतूहलमें होलें, इसलिए मोटी झूठ याने झूटी गवाही देना इसके त्याग, ऐसा साक्षी देऊं जिस के देने से दूसरेके घरका नाश होता हो तो इस से ऐसी भापा टालकर बोलनां चाहिए झूठी गवाही नहीं देनीं चाहिए,!

॥ ढाल ॥

करै झूंठरा भेद, त्यागो आणा उमेद, मनोरथ जद फलै ए, झूंठ छोटो टलै ए ॥ २४ ॥ करण जोग घाली एम, करै झूंठरा नेम, व्रत करै इसोए पोते निभै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये श्रावक को जितनी प्रकारसें झूंठ बोली जाती हैं उन्हें समजकर चितकी उमंगसे और उमदेसें त्यागकरणां, और छोटी झूंठ कोतूहलादि कारण बोली जातीहै उसका त्याग करणां, यह विचार मनमें हमेसा रखता रहै, जिस समय सर्वथा झूंठ बोलनें का त्याग होगा वोही दिन धन्य होगा, तात्पर्य ए है के दूसरा श्रावक व्रत करण योग युक्त असत्य बोलनेका त्याग करै अपनेसें निभसके सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्याके निमित झूंट। ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित झूंट। भूमिक ३ अर्थात् जगां जमीन के निमित झूंट। थापण मोसा ४ अर्थात् अमानत में खयानत। कूडी साख ५ अर्थात् झूंटी साक्षी। येह पांच प्रकारकी झूंट का त्याग करै वो श्रावकका तीसरा व्रतहै धर्म है, त्याग नहीं वो अव्रतहै आश्रव है जिससें पाप लगताहै,

---

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतणूं, करै अदत्तणत्याग,
मनमें समता आणिने, चोढै भाव वैराग ॥ १ ॥
इहलोकैं जस अतिवणूं, परलोकैं सुखपाय, भाव
सहित आराधियां, जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥
चोरी करै तेमानवी, गयाजमारो हार, मनुष्यतणूं
भव खोयनें, नरकां खावे मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावकका अदत्तका त्याग, याने विना दिये कुछभी न लेनां, ऐसे तीसरे व्रतको मनमें समभावलयाके वैराग्य में भाव चढावै जिससें इस लोकमें जस कीर्त्ति और परलोकमें अत्यन्त सुखी होय, और भाव सहित आराधनां करणेसे पुनः पुनर्जन्म मरण जीव अनादिकालसे कररहाहै सो मिटण सक्ताहै और चोरी करणेसें मनुष्य इस भवमें दुखी होके नरकमें जाता है, वहां महापीट और मार सहनी पडती है, इस लियें श्रावक को चोरी करनेंका त्यागकरना अवश्य चाहियें, यथाशक्ति त्याग करनां यो श्रावकका तीसरा (३) व्रतहै,

॥ ढाल ॥ चालतेहीज ॥

तीजो व्रतछे एम, करै अदत्तरो नेम, नकरै मोटकीए, हले छोटकीए ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

करै झूंठराभेद, त्यागो आण उमेद, मनोरथ जद फलै ए, झूंठ छोटो टलै ए ॥ २४ ॥ करण जोग घाली एम, करै झूंठरानेंम, व्रतकरै इसोए पोतै निभै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये श्रावक को जितनी प्रकारसें झूंठबोली जाती हैं उन्हें समजकर चितकी उमंगसे और उमदेसें त्यागकरणां, और छोटी झूंठ कोतूहलादि कारण बोली जातीहै उसका त्याग करणां, यह विचार मनमें हमेसा रखता रहै, जिस समय सर्वथा झूंठ बोलनें का त्याग होगा वोही दिन धन्य होगा, तात्पर्य ए है के दूसरा श्रावक व्रत करण योग युक्त असत्य बोलनेका त्याग करै अपनेसें निभसके सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्याके निमित झूंठ। ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित झूंठ। भूमिक ३ अर्थात् जगां जमीन के निमित झूंठ। थापण मोसा ४ अर्थात् अमानत में खयानत। कूडी साख ५ अर्थात् झूंठी साक्षी। यह पांच प्रकारकी झूंठ का त्याग करे वो श्रावकका तीसरा व्रतहै धर्म है, त्याग नहीं वो अव्रतहै आश्रव है जिससें पाप लगताहै,

---

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतणूं, करै अदत्तरात्याग,
मनमें समता आणिने, चोढे भाव वैराग ॥ १ ॥
इहलोकैं जस अतिवधै, परलोकैं सुखपाय, भाव
सहित आराधियां, जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥
चोरी करैं तेमानवी, गयाजमारो हार, मनुष्यतणू
भव खोयनें, नरकां खावे मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावकका अदत्तका त्याग, याने विना दिये कुछभी न लेनां, ऐसे तीसरे व्रतको मनमें समभावल्याके वैराग्य में भाव चढावैं जिससें इस लोकमें जस कीर्त्ति और परलोकमें अत्यन्त सुखी होय, और भाव सहित आराधनां करणेसे पुनः पुनर्जन्म मरण जीव अनादिकालसे कररहाहै सो मिटणे सक्ताहै और चोरी करणेसें मनुष्य इस भवमें दुखी होके नरकमें जाता है, वहां महापीड और मार सहनी पडती है, इस लिये श्रावक को चोरी करनेंका त्यागकरना अवश्य चाहियें, यथाशक्ति त्याग करनां वो श्रावकका तीसरा (३) व्रतहै,

॥ ढाल ॥ चालतेहीज ॥

तीजो व्रतछै एम, करै अदत्तरो नेम, नकरै मोटकीए, वले छोटकीए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरू कहते हैं अदत्तका त्यागकरै वो तीसरा व्रतहै, चोरी (२) दोय प्रकारकी है एक बडी, एक छोटी,

॥ ढाल ॥

म्हानी किमत्यागूं सांम, म्हारै घास ईंधणरो कांम, खिण खिण किणनैं कहूंए, किहां किहा आज्ञालेऊंए ॥२॥ म्हांनी त्यागेते धन्य, पिण म्हारो नहि मन्न, चित चोखो नहींए, कर्म घणां सहीए ॥ ३ ॥ सांथोदे गांठडीछोड, धाडोकरि तालो तोड, वस्तु मोटी अछैए, धणीजांणयांपछैए, ॥४॥ इसा अदत्तरात्याग. में पचख्या आंण वैराग, ते पिण, परतणी, नहिं घर भणीए ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोल्या हेमुनिराज छोटी चोरी ज्यो हांस्य कुतूहलमें या अनेक छोटी वस्तु मालिक के विनां पूछै लेनां इसके त्याग करने की मेरी सामर्थ्य नहीं, क्यों क मेरे घास ईंधण कहिये काष्टादिक जलानेकी चीजें, हरेक जगहसें किंचित मालिक से विनां पूछै लेनेका काम पडता है तो वारंवार किस किस सें पूछता फिरूं, इस लिये इसके त्याग मुझसें नहीं निभ सकते, इसमें छोटी चोरीका त्याग करै वो धन्यहै, लेकिन मेरा

मन बहुल कर्मी होनेसे नहीं होसक्ता और ज्यो वड़ी चोरी याने धाड़ा देनां, सांधा ऋेडा भींत फोड़ माल काढलेनां, या पड़ी हुई गठड़ी वगैरहः को उठालेनां धणी होते, तथा ताला तोड़नां इत्यादि चोरी करनेका त्याग मैंनें वैराग्य ल्याके कियाहै लेकिन पराये घरकी चोरी के त्यागहैं अपणें घरकी नहीं ।

॥ ढाल ॥

म्हांरा कुटुंवादिकमें माल, मौमें पड़े हवाल, भीड़ घणीसहीए, घरमें धन नहींए ॥६॥ जब तालो ल्यूं तोड़, वले गांठड़ी छोड, सांतोदे चोरस्यूंए, खोस ल्यूं जोरसूंए ॥७॥ इतरा मूंनै आगार, ते नरक तणांदातार, रमणी वसपड्योए, जंजीर जुड्योए ॥ ८ ॥ राजा लेवै डंड. होय लोकमें भंड, चोरी नहीं करूंए, इसो व्रत धरूंए ॥ ९ ॥ इसो व्रत मुनि राय, मोनें द्यो पचखाय, जीऊं जिहां भणीए व्रत, चोरी तणीए ॥ १० ॥

॥ अर्थ ॥

गृहस्थ कहताहै मैंनें जो चोरी करने का त्याग मर्यादा उपरान्त किया इसमें भी मेरे यह आगारहै के मेरे द्रव्य की कमीहोनेसे और द्रव्य के अभावसे दुखी होने पर मेरे कुटुंवियों का माल भींतफाड़ तालातोड़ या जबरदस्तीसे लेऊंतो मेरेत्याग नहीं. ए मेरे ज्यो आगारहैं नरकादि दुःखोंके देने वालेहैं, लोक-

न स्त्रीवस होनेसें कैदीकी तरैं माहे जंजीरसें जकड़ाहुवाहूं, चोरीके करनेसें राजतो डंडलेवै और दुनियांमें वदनांमीहो इस लिये चोरी नहीं करनें का व्रत अंगीकार करादो, हे मुनिराज यावत जीवन पर्यन्त जो व्रत लिया है उसको खंडित नहीं करूंगा।

॥ ढाल ॥

चोरीकरम चसडाल, तिणथी पड़ै हवाल, दुख नरकां तणांए, सहै अतिघणांए ॥११॥ चोरी ले पर माल, तिणमें पडै हवाल, नरक निगोद तणांए, दुःख होवे घणांए ॥ १२ ॥ परधन लेवै ताह, देवै पैलांरे दाह, ते नरकनां पाहुणांए, जात लजावणांए, ॥ १३ ॥ इहलोके उदयहुवे पाप, तो दुख भुगतै आपो आप, मार घणी पड़ैए, विण आई मैरे ए ॥ १४ ॥ तिणरा काटै हाथनै पांव, वलिशूलीदेवै चढाय, नकटो बूचो करैए, वले मार घणी पड़ैए ॥ १५ ॥ मूआ पछै चोररी काय, नाखै खाईरे मांय, तिहां कुत्ता आयनैंए, विगाड़ै कायनैए ॥ १६ ॥ वले कागा चांच सूं मार, तिणरा डैयां काढैवार, शरीर तिण तणूंए, वीपरीत दीखै घणूंए ॥ १७ ॥ तिणरादेखै मातनैं तात, मनमें घणां सिधात, इण चोरीकरी परतणीए, लजाया हम भणीए ॥ १८ ॥

लोक करै चोररी वात, ते सुणी मातनैं तात, वोलै रोवताए, नींचो जोवताए ॥ १६ ॥ चोरीसूं दुःख अनन्त, तिणरो कहतां नावै अन्त, चिहुं गति भट का वणांए ते पाप चोरी तणांए ॥ २० ॥ इमसांभल नरनारि, चोरी न करो लिगार, समता रस आणिनै ए, त्यागो जांणिनैंए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सत गुरू कहतेहैं हे भव्य जीवो चोरी महा चाण्डाल कर्म है, ऐसे कामसे अनेक तरह के दुःख होतेहैं, तथा नरकोंमें अनन्त दुःख सहने पड़तेहैं, पराया माल चुरानेसे उस मालके मालिक के हृदय को महा दाह लगजाता है. इसी सें निगोदादिक के पाने वाले होते हैं, मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके जन्म लज्जित करते हैं, अत्यन्त पाप के फलसें इसी भवमें दुख अपणे कर्मका भोगते हैं, फिर हाथ पग काटे जाते हैं, राज शूली चढा देता है. सिरः छेदभी करदेतेहैं, नांक कांन काटलिए जातेहैं अनेक प्रकारकी विटंबनां करीजातीहै, मरजाने पर चोरके शरीर को खाईमें डाल देते हैं, तो वहां कुत्ते कव्वे आदि अनेक दुर्दसा करे हैं, उसकी ऐसी व्यवस्था माता पिता देखकर महालज्जित होकर भागतेहैं, सोभी सामने नहीं झांक सकते, नीची नज़रही रखते हैं, कहते हैं इसनें हमारे कुलको कलंक लगाके लज्जित करादिया है, सतगुरू कहते हैं अत्यन्त दुःखदाई चोरी कर्म है इस के पापसे चतुर्गती संसारमें भ्रमण करनां पड़ताहै, ऐसा सुनके चोरी नहीं करणेका व्रत समता ल्याके धारण करो।

॥ ढाल ॥

केई आंणी मन वैराग, सर्वथकी दे त्याग, करण जोगांकरीए, मन समता धरीए ॥२२॥ कोई सोंसकरीदे भांग, तिणरा घणां निकलसी सांग, महा पापी मोटकोए, करम दीयो धकोए ॥ २३ ॥ चोखा पालेजे सोंस, त्यारी पूरी जे मनरी होंस, जासी देवलोकमें ए कोई जासी मोक्ष में ए ॥ २४ ॥ इति

॥ भावार्थ ॥

कई जीव ऐसे विरक्ती वैराग्य मग्नहोके तीन करण तीन योगसें मनमें समता भावसें सर्वथा प्रकार चोरी करणेका त्याग करतेहैं वो धन्यहैं,, केई भारी कर्मी जीव त्याग करके व्रतभंग करदेते हैं वो महा पापी होके कर्म मय तोफान के धक्के से संसार समुद्रमें डूबते हैं, इस लिये हे भव्यजनो अपणे लिए व्रत पचखाण के आराधणेंसें मनके मनोरथ सिद्ध होतेहैं, वो सुव्रती जीव देवलोक में या मोक्षमें जाते हैं ।

॥ इति तृतीय व्रतम् ॥

॥ अथ चतुर्थ व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

मनुष्य तणों भव पायनें, जे नर पालै शील ।
शिव रमणी वेगावरै, करै मुक्तिमें लील ॥ १ ॥

साधूत्यागै सर्वथा, गृहचारी परनार ।
मांठी निजर जोवे नहीं, तिणरा खेवापार ॥ २ ॥
कैयक श्रावक एहवा, आणों मन वैराग ।
भोगजाणें विषसारिषा, घरनारी दे त्याग ॥३॥

॥ भावार्थ ॥

मनुष्य भव पाके शीलपालै यानै मैथुनका त्यागकरै यह श्रावकका चोथा (४) व्रतहै, उसके पालनें सें वो जीव मोक्षकीको जलदी वरके सिद्धक्षेत्रमें ज्ञान दर्शनादि गुणों मयी परमानन्द भोगते हैं, साधूके तो सर्व प्रकार मैथुनके त्याग होतेहैं, और श्रावक के परदाराके त्याग होना आवश्यक है, जो जीव परस्त्री को खोटी नजरसे नहीं देखै तो उसके खेवापार याने परम सुख परमानन्द पदपावैं। कैयेक श्रावक असे वैराग्यभाव पूर्ण होतेहैं वो भोगोंको जहर (विषको) बरावर समझकर अपणी परणी हजारों स्त्रियोंसे मैथुन सेनेके त्यागीहैं, वो जीव महा वैरागी हैं वान्छित फल पाते हैं ।

॥ ढाल देशीतेहीज ॥

चोथोव्रत इमजांण, अब्रम्न तणां पचखांण, देवांगनां मनुष्यणीए, त्यागै तिर्य्यंचणीए ॥ १ ॥ वले पोतारीनार, तेहनूंकरै विचार तजै दिन रातरीए, परणी हाथरीए ॥ २ ॥ पखियादिकनां नेम, नर तो पालेएम, मोहणी परिहैरए, आत्मा

बस करैए ॥३॥ कोई सरव थकी दे त्याग, आंणी मन वैराग, विषयें ऊधरैए, मन समता धरैए ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरू कहतेहैं भव्यजनों अब्रह्म का त्यागकरे वो श्रावक का चोथाव्रतहै इंद्रियों के भोगोंको जहर विषके समान जाणकर पर स्त्रीका त्यागकरै जिस में देवांगनाका मनुष्यणीका तिर्यचणी प्रमुखका त्याग, और घरकी स्त्रिका भी विचार करै दिनरातका नियम माफिक त्याग करै, जिसमें परस्त्री प्रमुखका तो श्रावक कै त्याग होनां अवश्य चाहिए, आत्माको वशकर के मैथुन सेना त्यागै सोही धर्म है, कई जीव वैराग्य के भावसे विषयों में लिप्त न होके घरस्त्री और परस्त्रीका त्याग मन में समता धरके करते हैं उन्हैं धन्य है।

॥ ढाल ॥

म्हारै घरनारी सुं नेह, तिण नें किम देऊं छेह, आतम बस नहीं ए, कर्म घणां सही ए ॥५॥ करूं दिवसतणां पचखांण, राततणां परमाण, संतोष आदरूं ए, विषय परिहरूं ए ॥ ६ ॥ परनारी सूं प्रेम, मैं कीधो छै नेम, सूई डोरा करीए, ऐसी विगत धरीए ॥ ७ ॥ जे सेवै परनार, ते गया जमारो हार, नरकां मांही पड़ैए, ढील नहीं करैए ॥८॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोला हे मुनिराज आपने फरमाया वो सत्य है मैं भी ऐसा ही जाणता हूं परंतु घरकी स्त्रीके स्नेह राग में फंसा हुवा हूं इस से त्याग नहीं हो सक्ता आत्मा वस नहीं हो सक्ती, इस लिए दिनका तो त्याग करता हूं, और रातका प्रमाणोपेत मैथुनका त्याग है, और परस्त्री से सूई डोरावत छेनेका त्याग है, परस्त्री सेवन करणे वाले मनुष्य जनम हारकर नरकों में भटकते ही जाते हैं।

॥ ढाल ॥

चोथो व्रत घणो श्रीकार, सारां व्रतांरो शिरदार, व्रतांरो नायको ए, मुक्तिरो दायको ए ॥९॥ शील व्रत छै मोटो रत्न, तिणरा करिए यत्न, ते आतम ऊधरै ए, शिव रमणी वरै ए ॥१०॥ ए व्रत पालो निर्दोष, त्यांनै नैडी छै मोष, तिण में शंका नहीं ए, श्रीजिन मुख सूं कही ए ॥११॥ च्यार जातरा देव, करै ब्रह्मचारी री सेव, वले शीस नमावता ए, वान्दै गुण गावता ए ॥१२॥ जिण चोथो व्रत दियो भांग, त्यारां घणा निकलसी सांग, ते नरकां मांही पड़ै ए, घणूं रह रडै ए ॥१३॥ इह लोके फिट फिट होय, परलोकै दुर्गति जोय, तिण जन्म विगाड़ियो ए, मानव भव हारियो ए ॥१४॥

॥ भावार्थ ॥

चोथा व्रत अत्यंत श्रेष्ठ और सर्व व्रतों में मुख्य है और मोक्ष का दायक है, इस शीलव्रतरत्न को जतनकर अखंड रखने से आत्मोद्धार करके मुक्ति रमणी वरते हैं, इस व्रतको शुद्ध-पालने वालेके मोक्ष नजीक है श्री जिनेन्द्रों ने अपणे मुखसें फ-रमाया है ।

॥ उक्तंच ॥

देव दाणव गंधव्वा, जरक रक्कस किन्नरा, ।
वंभयारिं नमं संति, दुक्कडं जे करंतितं ॥१॥

॥ अर्थ ॥

देवता दानव गंधर्व यक्ष राक्षस किन्नर आदि ब्रह्म व्रत पालने वाले को नमस्कार करते हैं कारण ये महा कठिन काम है इससें वे पुरुष पुरुषोत्तम हैं ।

॥ भावार्थ ढालका ॥

भुवनपती वानव्यन्तर जोतषी वैमानिक ये च्यारों प्रकार के देवता ब्रह्मचारी की सेवा भक्ति करते हैं मस्तक नमा के गुण ग्राम करते हैं,, और जो चोथे व्रतका भंग करते हैं उ-नको पुनर्जन्म मरणादिक सांग बहुत करने पडते हैं, नरकों के दुःख सहने पडते हैं,, इसलोक में दुनियां उनकी गर्हा करती है, और परलोक में महादुखी होना पडता है ।

॥ ढाल ॥

जातिवंत कुलवंत ते आतम नित्यदमन्त, ते व्रत पालसीए, कुल उजवालसीए ॥ १५ ॥ नाहि

जातिवन्त कुलवन्त, वलिरसगृद्धिअत्यन्त, ते वि-
षयरो पालियोए, व्रत विणासियोए ॥ १६ ॥
निरलज लज्जा रहित, वलि विषयविकार सहित,
तिण व्रत कापियोए, ते मोटो पापियोए ॥ १७ ॥
ब्रह्मव्रतरा भांजणहार, धृगत्यांरो जमवार, ते न्यात
लजावणाए, दुरगति ना पावणाए ॥ १८ ॥
यथा लोकांरे मांय, ऊंचै स्वर बोल्यो नहि जाय,
या खामी मोटी घणीए, व्रत भांजण तणीए
॥१९॥ यो मोटो कियो अकाज, लज्जावन्तनै आवै
लाज, निरलज लाजै नहीं ए, सल्य घणी सहीए
॥२०॥ इण शील भांजणरो सोय, कहवत मिटै न
कोय, या मोटो महणोए, जीवै जिहां भणीए
॥२१॥ इण पापी कियो अकाज, अजे न आवै
लाज, तोही बोलै गाजतोए, निरलज नहिं लाजतो
ए ॥२२॥ ब्रह्मव्रत तणों करै भंग, तिणरो कदेन
कीजै संग, कुकर्म मांहि मिलियोए, करम कादै
गलियोए ॥२३॥

॥ भावार्थ ॥

जो जातिवन्त कुलवन्त होते हैं वोही अपनी आत्मा को चमत्कार आनन्द पाते हैं, और कुलको उज्वल याने उजला

करते हैं, और ज्यो जातिवन्त कुलवन्त नहीं है वो रसगृद्ध यांने आसक्त वसीभूत होके विषय रूप पासमें पड़के ब्रह्मव्रत का विनास करते हैं, वो निर्लज्ज विकारसवी व्रतको काटके महा पापी होता है ब्रह्मव्रत भंग करनेवाले को धृक्कार है, ऐसे जातिलजावणोवाले जीव दुर्गति के पाहुणे हैं, उनसें बहुत लोको में ऊंचे स्वर सें नहीं बोलाजाता है क्योंके यह बड़ी भारी खोट है, कोई लज्जावान होय उनको सरमांना पड़ता है, किन्तु निर्लज तो निन्दा सें भी नहीं लाजते हैं, लेकिन इस सीलव्रत भांजणे का सल्य तो उनके जीमें खटकताही है, चाहै जितना बड़ा आदमी क्यों न हो मगर लोगोंमें कहणावत तो बणीही रहती है, ए टोगा पाघवं जीवन पर्यन्त रहता है, पांच आदमियों में अगर बोलै तो कहते हैं के देखो इस पापी नैं भारी अकाज किया लेकिन अब भी ऊंचाहोके बोलता है, इसलिए ब्रह्म व्रतको भंग नहीं करनां तथा करने वालेका संगभी नहीं करनां चाहिए, संग करने सें उसके कर्त्तव्य सामिल होके कर्ममईकादेमे गलित होते हैं।

॥ ढाल ॥

जे सेवै परनार, ते गया जमारो हार, लजावे न्यातनै ए, पड्या मिथ्यातमें ए ॥२४॥ परनारी मा वहन समान, त्यांसूं न करै मांठो ध्यान, चित चोखो कियो ए, ब्रह्मव्रत लियो ए ॥२५॥ कोई छोड सरमनें लाज, त्यांसूंई करै अकाज, ते निर्लज नहिं लाजियो ए, डाकी वाजियो ए ॥२६॥ करम

जोग जाय भांज, पिण केतांनें आवै लाज, केई लाजै नहीं ए, वेसरमी सही ए ॥२७॥ कोई सिधावै मन मांहि, मैं मोटो कियो अन्याय, पछतावो अति घणों ए, खोटा कर्तव्य तणूं ए ॥२८॥ जिणरो चोथो व्रत गयो भांग, तिणरो पूरो अभाग, ते नागो निरलजोए, तिण में नहीं मजो ए ॥२९॥ ब्रह्मव्रतनी नव वाड, जे पालै निर अतिचार, अडिग सैंठो घणूंए, मन जोगां तणूं ए ॥३०॥ तिण लोप दीधी नव वाड, तिणरा हुवे विगाड़, खुरावी होवै घणी ए, ब्रह्म भंग तणी ए ॥३१॥ व्रत भांग सेवै परनार, ते गया जमारो हार, फिट फिट होवै घणां ए, कुजस तिण तणूं ए ॥ ३२॥

॥ भावार्थ ॥

जो आदमी पराई स्त्री को सेते हैं वो मनुष्यव्यवहार कर अपणी जातिको लजाते हैं, मिथ्यात्वमयी कूप में पड़ते हैं, और जो परस्त्री को माता भैण के समान समझ कर खोटी नजर नहीं ताकते उनने अपणां चित्तको स्वच्छकर ब्रह्मव्रत अंगीकार किया हैं, कोई ऐसे निर्लज्ज होते हैं सो मा, भैण से भी नहीं चूकते, वो नागे हाकी दुनियां में कहलाते हैं, और कइ एक ऐसे भी हैं, पूर्व संचित पाप से कभी ऐसा होभी जाय तो जन

समुदाय में लज्जित होते हैं मन में पछतावा करते हैं मैंने अनर्थ किया अन्याय किया है इस वास्ते जिसके चोथे व्रतका भंग होगया उसका तो पूरा अभाग्य है, वो कपड़े सहित भी नंगा निर्लज्ज है, इसमें कुछ मजा नहीं है इस वास्ते ब्रह्मव्रत को नव वाड सहित पालन करे और दृढ होकर अडिग रहे मनको चंचल न करे उनहीं की बलिहारी है जिसने नव वाड़ को लोपदी है उसका बिगाड़ बहोत है ब्रह्मव्रत के भंग करने सें, ज्यो इस व्रत का भंग कर के पराई स्त्री सेवन करते हैं वो मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके संसार में निन्दित बहुत होते हैं उनका अपयश बहुत दुनियां में होता है ।

॥ ढालतेहिज ॥

चोखै चित पाले शील, ते रहे मुक्ति मैं लील, राखो नित्य आसता ए, पामें सुख सास्वता ए ॥ ३३ ॥ दिन दिन चढते रंग, पालो व्रत अभंग, मन समता धरोए, शिव रमणी वरो ए ॥३४॥ ब्रह्मव्रतनें श्री-जगदीस, ओपमा कहि बत्तीस, दसमां अंग में कही ए, सूरा पाले सही ए ॥ ३५ ॥ करण जोग सुजाण, ज्योरा शुद्ध पिछाण, चोखे चित्त पालज्यो ए, दूषण टालज्यो ए ॥३६॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरू कहते हैं इस सीलव्रतको चोखे चित्त पालने सें मोक्ष में सास्वते आत्मिक सुखों में लील विलास सदा सर्वदा

पाते हैं, इसलिए इसकी आस्था प्रतिति रखके दिन २ चढते प्रणामों से मनमें समता ल्याके ए ब्रह्मव्रत को पालन करो इस व्रत को श्री जगदीश्वर प्रभुने श्री दसमां अंग में बत्तीस ओपमा दी है, इस ब्रह्मव्रत को जो सूरवीर पुरुष होते हैं सो पालते हैं और वांही शिव मयी स्त्रिको वरते हैं इस लिए कहना है महानुभावो करण जोग ब्योरा शुद्ध विचारके लिया हुआ व्रत को अच्छी तरहें निर्दोष पालन करो कोई प्रकार सें किसी भी हालत में दोष मत लगावो ।

अथ पञ्चमव्रत

॥ दोहा ॥

पांच में व्रत त्यागै परिग्रह, ते परिग्रौ मूरछा जाण । तिणसूं निरन्तर जीवेर, पाप लागै छै आंण ॥ १ ॥ ए मोटो पापछै परिग्रहो, तिणथी गोता खाय । सांसो हुवे तो देखल्यो, तीन मनोरथ मांय ॥ २ ॥ ए अनर्थ ज्ञानी भाषियो, नरक लेजावे ताण । यती मार्गनूं भंजणो, निषेदकियो इम जाण ॥ ३ ॥ खतुत वथु हिरण सुवर्ण तणों, धन धान वलि जाण । द्विपद नें चोपद तणों, कुम्भी धातु तणां प्रमाण ॥ ४ ॥ खेत ऊघाडी भूमिका, बहु हाट हवेली जाण । रूपा नें सोना तणां कौ

सक्ति सारू पच्चखाण ॥ ५ ॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य छै, यां सगलारो करै प्रमाण । राख्या ते सगला अव्रत छै, बाकी सगला पच्चखाण ॥ ६ ॥ ए नव जातरो बारज परिग्रहो, तेहनो करै प्रमाण । मूरछा तै अभिन्तर परिग्रहो, तिणसूं पाप लागै छै आंण ॥ ७ ॥ बारज परिग्रहो नव जातिरो, ममता करि ग्रह्यो छै तास । तिणसूं यानें परिग्रह कह्यो, तिणथी पापलागै छै आंण ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरु कहते हैं पञ्चम व्रत में श्रावक परिग्रह की मर्याद करै, सचित अचित और मिश्र इन तीनूं जाति के द्रव्य पर मूरछा है सोही परिग्रह है जिससें जीवके निरन्तर पाप लगता है, परिग्रह रखना ये मोटा पाप है इससें चतुर्गति संसार मयी समुद्र में जीव अनादि कालसें गोता खा रहा है, श्रावकों के तीन मनोर्थ में परिग्रह को महा अनर्थ का मूल तथा असंत दुखःदाई कहा है, परिग्रह में लिप्त रहने वाला जीव नरक में जाते हैं, तथा यती मार्ग का ध्वंस करने वाला है, इस लिए परिग्रह की निषधना ज्ञानीयोंने करी है, सो परिग्रह नव प्रकारका है—खेत १ याने उघाडी भूमि, वत्थु २ याने ढकी भूमि मकान वगैरह, हिरण ३ याने चांदी आदि वस्तु, सुवर्ण ४ याने सोना, धन ५ याने रोकड़ रुपया आदि, धान ६ याने अनाज, कुम्भी धातु ७ याने तांबा पीतल कांसी लोहा आ-

दि, द्विपद ८ याने दास दासी आदि, चौपद ६ याने गाय भैंस घोड़ा हाथी आदि, ये नव प्रकार का परिग्रह है सो बाह्य परिग्रह है और इनपर मूरछा रक्खे सो अभिन्तर परिग्रह है, बाह्य अभिन्तर परिग्रह से जीव के पाप लगता है इस लिए श्रावक यथा शक्ति इनकी मर्याद करिके त्याग करें सो श्रावक का पञ्चम व्रत है, आगार रक्खा वो अव्रत है।

॥ ढाल देसी तेहिज ॥

परिग्रहनूं परिहार, श्रावक करे विचार, समता उर धरे ए, नव भेदैं करे ए ॥१॥ खेत्र वथु छे एह, सोनो रूपो तेह, धन धान द्विपदा ए, कुम्भी धातु चौपदा ए ॥२॥ ए नव विधि संख्या थाय, त्यांरी वन्छा देवे मिटाय, तृष्णा परिहरै ए, मन समता धरै ए ॥३॥ ममता बुरी बलाय चिहूं गति में भटकाय, घणों रड़ बडै ए, नहीं जक पड़ै ए ॥४॥ मनसूं वारो विचार, ए नरक तणां दातार, एहनें टालवो ए, व्रतनें पालवो ए ॥५॥ नव जातिरो परिग्रह ताहि, विचार करी मन मांहि, मूरछा परिणामो ए, मार्ग नहीं मुक्तिरो ए ॥६॥ ए मोटो प्रतिबंध पास, करे बोध बीजरो नास, मार्ग छै कुगतिरो ए, नहीं है मुक्तिरो ए ॥७॥ परिग्रह छै मोटो

फंद, कर्म तणूं छै बंध, नरक ले जावै सही ए, तिहां मार घणी कही ए ॥८॥ परिग्रह महा विकराल, मोटो छै माया जाल, तिण में खूतां सही ए, धर्म पावै नहीं ए ॥६॥ कनक कामनी दोय, त्यां सेयां दुर्गति होय, फंद छै मोटको ए, त्यांसूं खावैधक्को ए ॥१०॥ कनक कामनी दोय, पैलानैं पकड़ावै कोय, तिण फंद में नांख्यो सही ए, निकल सके नहीं ए ॥११॥ परिग्रह दीधां कहै धर्म, ते भूला अज्ञानी भर्म, कर्म घणा सही ए, समझ पड़ै नहीं ए ॥१२॥ इण परिग्रह तणां दलाल, त्यां में पिण होसी हवाल, दुःख नरकां तणा ए, सहसी अति घणा ए ॥१३॥ ए राख्यां लागै छै कर्म, रखांयां पिण नहीं धर्म, तीन करण सारखा ए, कीज्यो पारखा ए ॥१४॥ ए परिग्रहना दातार, त्यांरा सावझ जोग व्यापार, मार्ग नहीं मोक्षरो ए, छांदो इण लोकरो ए ॥१५॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरू कहते हैं हे भव्य जनों क्षेत्र वत्थु आदि एनवूंहीं जाति का परिग्रह महा दुःखदाई है बौध बीजका नाश करिके करन दुःखोंका देनेवाला है इससें ... ादह मोटा माति-

बंध पाप कोई नहीं है इसकी अभिलाषा से ही अशुभ कर्मका बंध होता है तो परिग्रह रखने से या रखावने से तो महा पाप लगता है इस लिए इसकी ममता मत करो ये बड़ा माया जाल फंद है इस में लिप्त रहनेसे धर्म नहीं कियाजाताहै कनक और कामनी ए दोनों ही सेवनसे और सेवाने से दुर्गति जातेहैं परंतु कितनेक अविवेकी जन परिग्रह देनेमें धर्म समझतेहैं सो उनकी भूलहै अज्ञानवश भर्ममें पड़के पंचमां आश्रवद्वार जो परिग्रह है उसे लेने लेवाने में जिन कथित धर्म प्ररूपतेहैं, किन्तु एह नहीं विचारते कि परिग्रह रखना सो आश्रव द्वारहै जिससे अशुभ कर्म लगतेहैं तो दूसरेको देके रखाने और अनुमोदने में धर्म कहांसे होगा रखना सो पहिला करणहै रखाना वो दूसरा करण है और रखते हुए को भला समझना वो तीसरा करणहै यदि पहिला करण में पाप है तो दूसरा और तीसरा करणमें धर्म कैसे होसक्ताहै, इस लिए बुद्धिवान जनोंको करण जोग की पहिचान करिके यथाशक्ति परिग्रहका त्याग करना चाहिए आगार रक्खा सो अव्रत सेनाहैं और उसमेंसे किसी दूसरे को दिया सो अव्रत सेवानाहै सावद्य जोग व्यापारहै देना देवाना आदि यह सब संसार का मार्गहै परंतु मुक्ति का मार्ग कदापि नहीं है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

अशणादिक च्यारुं आहार, श्रावकरे परिग्रह मझार, ते खावें खवावें सहीए, तिणमें धर्म नहीं ए ॥ १६ ॥ श्रावक ते सांहों मांहि, देवै लेवै छै

ताहि, ते सघलोही परिगरो ए, इणमें शंका मत धरोए ॥ १७ ॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य, तिण में आगे पाछे सर्व, ए सघलो परिगरो ए, ते ममता मांहि खरोए ॥ १८ ॥ सचित अचित सघलोही ताहि, ग्रहस्थरे परिग्रह मांहि, कह्यो उवाई उपंग में ए, वलि सुयगडायंगमें ए ॥ १९ ॥ त्यांरो श्रावक कियो प्रमाण, त्याग्यो ते व्रत पिछाण, बाकी अव्रतमें राखीयो ए. सूत्रछै साखीयो ए ॥ २० ॥ परिग्रह दियो धर्म हेत, तिणरी आज्ञा देत, कहि कहिने दिरावताए, एहवो धर्म करावता ए ॥ २१ ॥ इण धनथी अनर्थहोय, धर्म धुरा चाले नहीं कोय, भव भव भटकावताए, दुर्गति पहुंचावताए ॥ २२ ॥ धनथी धर्म न थाय, तीन कालरे मांय, सांचो करि जाणजोए, शंका मत आणजो ए ॥ २३ ॥ इण परिग्रह मांहि रक्त, त्यांनें आवे नहीं सम्यक्त, मूर्च्छा तिणमें सहीए, समझ पड़े नहीं ए ॥ २४ ॥ ज्यांरे परिग्रहासूं परतीत, तेतो होसी घणां फजीत, नरकां जावसीए, जोखां खावसीए ॥ २५ ॥ इणथी बधे संसार, जावे नरक निगोद मझार, घणो रडवडैए, जक नहीं पड़ेए ॥२६॥

सचित अचित द्रव्य ताहि, ग्रहस्थरे अव्रत मांहि, त्यांरो त्याग कियो नहीं ए, त्यांरो पाप लागे सही ए ॥ २७ ॥ तीन करण लागे पाप, तिणसूं दुःख भोगवै आप, त्यानें त्याग्यां व्रत होसीए, जब होसी खुसीए ॥ २८ ॥ करण जोग घालीजे जाण, कीजे शुद्ध पचक्खान, चोखे चित पालजोए, दूषण टालजोए ॥ २९ ॥

॥ इति पञ्चम् व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

आहार पानी आदि च्यारूं प्रकार के आहार श्रावक के पास हैं सो परिग्रह में हैं उन्हें स्वयं खावै या खुवावै और भला जाने जिसमें धर्म नहीं है तथा सचित अचित मिश्र द्रव्य जो ग्रहस्थी के पास है वो भी परिग्रहमें ही है मतलब जो जो आगार रक्खा है सो अव्रतमें है उवाई और सुयगड़ा अंग सूत्र में खुलासा कहा है त्याग किया सो व्रत और जिस द्रव्य के त्याग नहीं किया सो अव्रतहै, धर्म हेतु परिग्रह दियां दिवायां और देते हुए को अच्छा समझा सो आश्रव है जिस से पाप कर्म उपार्जन होता है क्योंके धन तो अनर्थ का ही मूल है धन से जो धर्म होय तो फिर धन के त्याग क्यों करे, जितना बन-सके उतनाही धनोपार्जन करे क्योंके जितना ज्यादह धन होगा उतनाही ढेर धर्म करेगा तो फिर धनवान तो बिना तप संयम् किए ही धनके जरियेसें सीधे मोक्षमें चले जांएगे और निर्धन कदापि नहीं मोक्ष जाएगा किन्तु नहीं २ तीन कालमें भी धनसे धर्म नहीं होता है

परिग्रह के तो साग करने करावने और अनुमोदन में ही धर्म है, परिग्रह में रक्त रहने वाले को सम्यक्तका लाभ नहीं होता है और सम्यक्त का अभाव में मोक्ष कदापि नहीं जासक्ताहै, परिग्रहमें तो संसार बधताही है तथा पाप कर्मोपार्जन करिके नरक निगोदादिमें जाके अनन्त दुःखों के भोगी होताहै ज्ञानी देवोनें ऐसाही शास्त्रों में कहा है इस लिए सतगुरू कहते हैं हे भव्यजनों! इस परिग्रह को महा दुःखदाई जान के करण जोगों से यथाशक्ति साग करो और अपने लिए हुए व्रतको अखंड पालनकरो।

॥ अथ षष्टम् दिशि मर्याद व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणू व्रत धारतां, मोटी बांधी पाल।
छोटारी अव्रत रही, ते पाप आवै दगचाल ॥१॥
तिण अव्रतनें मेटवा भणीं, पाहिलो गुणव्रत देख।
दिशि मर्यादा मांडनें टालै पाप बिशेख ॥२॥ मां-
हिली अव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रत धार। द्रव्या-
दिक त्यागन करै, भोगादिक परिहार ॥ ३ ॥ जे
द्रव्यादिक राखिया, जेहनी अव्रत जाण। अर्थ दंड
छूटे नहीं, अनर्थ दंड पचक्खाण ॥४॥ छट्ठो व्रत
श्रावक तणूं करै दिशि तणूं प्रमाण। हिन्सादिक
त्यागै छऊं दिशातणी, मनमें समता आंण ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

उपरोक्त पांच अणू व्रत जो श्रावक अङ्गीकार किए हैं जिससें बोहतसी अव्रत स्थूल पणें मेटदी है इन उपरांत जो अव्रत रहीहै जिससें पाप मर्यो पानी दगचाल आरहाहै इस लिए तीन गुन व्रत याने पञ्च अणू व्रतों को गुनदायकहैं इसलिये उन का वर्यान करतेहैं, प्रथम गुनव्रत दिशि गमनका मर्याद, दूसरा गुनव्रत उपभोग परिभोगकी मर्याद, और तीसरा गुनव्रत अनर्थ दंडका त्याग है, जिस में पहिला गुनव्रत पूर्वादिदिशि मर्याद करते हैं अर्थात् ऊंची नीची आदि दसों दिशाकी मर्याद करके उपरांत हिन्सादि सावद्य कार्य करने का मन में समता लाके त्याग करें सो श्रावकका छट्ठाव्रत है,

॥ ढाल ॥

इण पुर कम्बल कोई न लेसी । फिर चाल्या पाछा परदेसी ॥एदेसी॥ ऊंची नींची दिशि कोस वे च्यार । तिण बाहिर सावद्य परिहार । त्रिछी दिशि पांचसय प्रमाण । इण विधि दिशितणों पचखाण ॥१॥ पृथिवी यादिक जीव न मारे, छोटाई भूंटतणूं परिहार । चोरी न करे मईथुन टाले । धनसूं ममता पाछी वाले ॥२॥ मांहि बैठा बाहिरलो लेवो देवो । तिणरा त्याग करे स्वमेवो । बाहिरली वस्तु मांहि मंगावे नाहीं । मांहिली वस्तु बाहिर दे नांहीं ॥ ३ ॥ जघन्यतो येक आश्रव त्यागेकोई । उत्कृष्टा आश्रव त्यागे पांचूंई ।

येक करण तीन जोगसूं जाण। बारला आश्रवरा करै पचखाण ॥४॥ कोई दोय करण तीन जोगसें ताई। त्यागकरी अव्रत दे मिटाई। कोई तीन करण तीन जोगसूं जाण पांचूं आश्रवरा करै पचखाण ॥ ५ ॥ बारला आश्रवनां कीधा त्याग। अव्रत छोडीछै आणि बैराग। क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्रमें जाण। काल थकी जावज्जीव पचखाण ॥ ६ ॥ कोई देवादिक तिणनें नांखै बारे। तो पिण नहीं सेवै आश्रव द्वार। कोई कष्ट पड़यां राखैछैं आगार। पोतारी कचाई जाण तिवारे ॥ ७ ॥ कोई मंत्री देवादिकनें बुलावै। तिण आगै आपरो काम करावै। ते पिण छट्टो व्रत लियो तिणवार। इतनूं पहिलां राख्यो आगार ॥ ८ ॥ इत्यादि राखै आगार अनेक। आगार विना करै नहीं येक। आगार राख्यां अव्रत पाप लागे। बिन आगार कियां व्रत भागे ॥९॥ छट्टा व्रतरो बहु बिस्तारो। ते कहितां नहीं आवै पारो। ये संक्षेप कह्यो विस्तार। बुद्धिवन्त जाण लेसी अनुसार ॥ १० ॥ छट्ट व्रत एहवा पचखाण। मांहि वर्णा द्रव्यादिक जाण। तेहनी अव्रत टालण काज। सातमूं व्रत कह्यो जिन राज ॥११॥ इति॥

॥ भावार्थ ॥

छटा व्रत में श्रावक दसों दिशिका प्रमाण करै सो कहते हैं। ऊंची नींची दिशिका त्याग तो यथाशक्ति दो च्यार कोसादिक उपरंत जाने का त्याग करै, और तिरछी दिशा अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण तथा विदिशा का पांचसह या कम ज्यादह कोस यथाशक्ति रखके उपरान्त जाणे का त्याग करै, कदा प्रमाण उपरान्त जाणे को काम पड़जाय तो वहां पृथिव्यादि षट कार्यों को मारने का छोटी बड़ी झूठ बोलने का चोरी करने का मिथुन सेनेका और परिग्रह रखने का त्याग है, जो दिशि में जाने आने का आगार रक्खा है उस जगहें भी बाहर की वस्तु मांहि नहीं मंगावें और मांहि की वस्तु बाहर न भेजें यदि आगार रक्खें तो उसका प्रमाण करें यथाशक्ति, जघन्य एक आश्रव द्वार सेने का उत्कृष्ट पांचूं हीं आश्रव द्वार सेने का त्याग करे, कितनेक श्रावक ऐसे होते हैं सो एक करण तीन जोग से त्याग करते हैं कितनेक दोय करण तीन जोग से तथा तीन करण तीन जोग से त्याग करते हैं तात्पर्य जिस जिस भांगे त्याग करैं जितने भांगे श्रावक के त्याग होसक्ते हैं, तथा दिशि का प्रमाण किया उसके बाहिर से वस्तु मंगाणे का वा उसके उपरान्त जाके आश्रव द्वार सेने का त्याग किया है उन्होंने बैराग्य से बहुत छोड़ी है, ए त्याग क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्र में कालथकी यावत जीवन पर्यन्त हैं अर्थात् छटा व्रत के त्याग किञ्चित काल के नहीं होसक्ते हैं, कदा ऐसे त्यागवाले को कोई देवतादि बाहिर लेजावे तो फिर वहां पंच आश्रवद्वार नहीं सेना क्योंकि उसने त्याग किया है, तथा किसीनें कष्ट पड़णे में आ-

गार रख लिया है या अपनें मंत्री देवता को बुलाके अनेक काम करते कराते हैं तो वो आगार पहिले रखलेना चाहिए अर्थात् त्याग करते समय जो आगार रक्खा है सो अपनी कचाई है जिस सें अव्रत का पाप लगता है परंतु त्याग का भंग नहीं होता, इसलिए जो आगार नहीं रक्खा वो नहीं करें, और श्रावक अपना छट्टा व्रत का पालन निर्दोष करे जिस सें यह लोक परलोक में सुखी हो, इस छट्टा व्रतके बहोत विस्तार हैं यहां संक्षेप मात्र कहा है इससें बुद्धिवन्त विचार लें ।

॥ इति छट्टा व्रत सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ सातमां व्रत प्रारंभ ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत श्रावक तणूं, तिणमें उपभोग परिभोगनां त्याग । गमती वस्तु त्यागें तेहनें, आवै छै वैराग ॥ १ ॥ भोग आवै एक बारमें, ते कहिए उपभोग । वारंवार भोग आवै जीवनें, तिण नें कह्यो छै परिभोग ॥ २॥ उपभोग परिभोगनीं, अव्रत कही भगवान । त्यांरो त्याग करै सतगुरु कनें, ते सातमूं व्रत प्रधान ॥ ३ ॥ उपभोग परिभोग काम छै ते भोग महा दुःख खान । किम्पाक फलनीं दीधी ओपमां, भगवन्त श्री वृधमान ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

जो छट्टाव्रत में आगार रक्खा उसकी अव्रत मेटणे के लिए सातमां व्रत कहते हैं। सातमां व्रत में श्रावक उपभोग परिभोग के त्याग यथाशक्ति करें, जो वस्तु येक वक्त भोगनें में काम आवै अर्थात् आहार पानी आदि जिसें उपभोग कहते हैं और जो बारंबार भोगने में आवैं जैसें वस्त्र ज़ेवर आदि उसें परिभोग कहते हैं, इन उपभोग परिभोगों को भगवन्तों नें किम्पाक फल समान कहा है सो भोगते समय अच्छे लगते हैं और पीछे सदा दुःखों की खान हैं, इसलिए जितना जितना आगार रक्खें वो अव्रत हैं जिससें पाप कर्मोंपार्जन होते हैं आगार उपरान्त त्याग सतगुरु के पास किया वो सातमां व्रत है, उपभोगों परिभोगों के बहोत भेद हैं परन्तु इहां छब्बीस बोल करके बताते हैं।

॥ ढाल ॥

इणपुर कम्बल कोई न लेसी फिर चाल्या पाछा परदेसी ॥ एदेसी ॥ अंगोछा १ दांतण २ फल ३ अभिंगन ४। उवटणा पीठी ५ नें मंजन ६। वस्त्र ७ विलेपन ८ पुष्प ९ आभरण १०। धूपखेवण ११ पीवण १२ नें भख्खन १३ ॥ १ ॥ उदन १४ सूप १५ विगय १६ साग १७ विमास। महुर १८ जीमण १९ पांणी २० मुख वास २१।

बाहन २२ सयन २३ पन्नी २४ सचित २५ । द्रव्य २६ संख्या करित्यागे एक चित्त ॥२॥ ए छव्वीस बोलतणूं प्रमाण । धन्य त्यागै ते समता आंण ॥ नाम लेई विवरो करलीजे । करण जोग घाली व्रत कीजे ॥३॥ ए छाईस बोल भोगवियां संताप । भोगायां पिण लागै छै पाप ॥ अनुमोदियां धर्म किहांथी होय । तीनूं ही करण सरिषा जोय ॥ ४ ॥ मूर्खरे दिल बात न वैसे । न्याय छोडि झगड़ा में पैसे ॥ सुगुरू छांडि कुगुरू सें परिचा । भारी हूवै करै ऊंधी चरचा ॥ ५ ॥ व्रत अव्रत कहि जिन न्यारी । समझै नहीं तिणरे कर्म भारी ॥ मूढ मती नव तत्व न जाणैं । लीधी टेक छोडे नहीं ताणैं ॥६॥ छव्वीस बोल तणूं आगार । तेतो अव्रत आश्रव द्वार ॥ त्यांमें केई उपभोग परिभोग । त्यांनें भोगवै ते तो सावद्य जोग ॥ ७ ॥ त्यांरो त्याग करै मन समता आंण । शक्ति सारू करै पच्चखाण ॥ येक करण तीन जोगां सें त्यागै । जब पोतै भोगणरो पाप न लागै ॥ ८ ॥ दोय करण तीन जोगां सें पच्चखाण । तिण कै भोगणरो पाप टाल्यो जाण ॥ तेतो पोतै पिण भोगवे नहीं कांय । दूजा नें पिण भोगा

वे नहीं ताय ॥ ९ ॥ तीन करण तीन जोगां सें त्यागै । तिण नें नव हीं भांगारो पाप न लागै॥सो-गवै नहीं भोगावै नाहीं। भोगवणा वाला नें सरा-वे नहीं ताही ॥१०॥ जे जे सेरी छूटी रही त्हांई । तिण सें पाप कर्म लागे छै आई॥ जे सेरी रुकी संवर द्वार । तिणसें पाप न लागै लगार ॥११॥ छूटी सेरी में श्रावक खावै खुवावै । खातां नें पिण छूटी सेरी में सरावै॥रुकी सेरी में खावै खुवावै नां-हीं । अनुमोदना पिण न करै काहीं ॥ १२ ॥ श्रा-वकनें मांहो मांहि छकाय खुवावै। वलि छकाय मा-री नें जीमावै॥ए अव्रत सावद्य जोग व्यापार ॥ति-ण मांहि धर्म नहीं छै लिगार ॥ १३ ॥ श्रावक नें मांहो मांहि छकाय खुवावै। वलि छ काय मा-री नें जिमावै॥तिण मांहि धर्म मिथ्यात्वी जाणै। कर्म तणों बस ऊंधी ताणै ॥ १४ ॥ व्रत आश्री श्रावक नें कह्यो छै धर्मी। अव्रत आश्री कह्यो अ-धर्मी॥तिणसूं श्रावक नें धर्माधर्मी जाणौं । पन्नव-णा भगवती सें जोय पिछाणौं ॥ १५ ॥ श्रावक रो खाणों पीणां नें गहणां । मांहो मांहि लेणूं नें देणां॥ए तीनूं हीं करण अव्रत में घाल्या । उववाई

सुयगड़ा अंग में चाल्या ॥ १६ ॥ शब्द रूप रस गंध स्पर्सा। राख्या छै तिणरी लगरही आसा॥ एहही उपभोग परिभोग। तिणरा मिलै छै विधि संजोग ॥ १७ ॥ राख्या छे तिणरी अ-ब्रत जाणों। तिणरो समय समय पाप लागै छै आणों॥ त्यांनें त्याग्यां होसी संवर सुख दाय। ति-णसें अब्रतरो पाप मिट जाय ॥ १८ ॥ उपभोग परिभोग भोगवै छै जाणि। तिणसूं पाप लागै छै आणि॥भोगायां सें दूजै करण पाप। तिणसूं होसी बहोत संताप ॥ १९ ॥ अनुमोदै तेसरावै जाण। तिणसें पिण पाप लागै छै आंण॥ श्रावकरा उ-पभोग परिभोग। ए तीनूं करण छै सावद्य जोग ॥ २० ॥

॥ भावार्थ ॥

सातमां व्रत में छब्बीस बोलोंकी मर्यादा करिके उपभोग परिभोग के साग करै वो व्रतहैं. आगार रक्खा सो अव्रत हैं, सो छब्बीस बोल कहते हैं। उलणिया विहं अर्थात् अंगोछादि-नीं विधि १, दंतण विहं अर्थात् दंत पखालण की २, फल विहं अर्थात् फल आम्र दाडिम केला आदिकी विधि ३, अ-भिंगण विहं अर्थात् मर्दन तेल मालिस विधि ४, उवट्टण वि-हं अर्थात् उवटणा पीठी आदिकी विधि ५, मंजन विहं अर्थात्

स्नान विधि ६, वत्थ विहं अर्थात् वस्त्रकी विधि ७, बिलेवन विहं अर्थात् चंदनादिका विलेपन विधि ८, पुप्फ विहं अर्थात् पुष्पकी विधि ९, आभरण विहं अर्थात् आभूषण गहणां जेवर आदिकी विधि १०, धूप विहं अर्थात् धूप अगरादि खेवणें की विधि ११, पेज विहं अर्थात् दूध आदि पीवणें की विधि १२, भक्खन विहं अर्थात् खाणें की विधि १३, उदन विहं अर्थात् चांवल आदि धानकी विधि १४, सूप विहं अर्थात् दाल की विधि १५, विगय विहं अर्थात् घृत गुड़ आदि षट विगय की विधि १६, साग विहं अर्थात् साग तरकारी की विधि १७, मधुर विहं अर्थात् मधुर वेलड़ी आदि का फल मेवादि की विधि १८, जम्मण विहं अर्थात् जीमणे की विधि १९, पाणी विहं अर्थात् पानी उदक की विधि २०, मुखवास विहं अर्थात् लवंग सुपारी एलायची आदिकी विधि २१, वाहण विहं अर्थात् गाडी बग्गी आदि सवारी की विधि २२, सयण विहं अर्थात् पाट बाजोट कुरसी मेज बिछावणा आदि की विधि २३, पन्नी विहं अर्थात् पगरखी आदि की विधि २४, सचित विहं अर्थात् सचित ते जीव सहित पृथिव्यादि की विधि २५, द्रव्य विहं अर्थात् द्रव्य ते अनेक प्रकारसें खाणें पीणें की सर्वनाम की वस्तुओं की विधी २६, उपरोक्त छव्वीस बोलों को समता ल्याके त्यागे उन्हें धन्य हैं, अथवा रखके मर्याद उपरान्त विधि सहित कारण जोग करिके दसतः सागन करे वो श्रावक का सातवां व्रत है, तथा पर छव्वीस बोलों का त्याग न करे अथवा जितनां जितना आधार रखता है वो वो अव्रत आश्रव द्वार है जिससे पाप कर्म लगते हैं आप भोगें सो पाप दूसरे को भोगावे जिस में भी पाप है क्योंके वो दूसरा कारण है और भोगते हुए को

भला मानें वो तीसरा करण है उसमें भी पाप कर्मोंरपारजन होते हैं, परन्तु मूर्ख मानव के दिलमें ए बात पका इक जच-ना महा मुश्किल है वो लोग न्याय की तरफ दृष्टि न देकर उलटे लड़न लग जाते हैं इसका कारण सुगुरुवों को छोड़के कुगुरुवों का परिचय है, किन्तु न्यायाश्रयी और समदृष्टी जीतो अच्छी तरहेंमें जानते हैं कि श्रावक के जिस कार्य में पहिले करण पाप हैं तो दूसरे और तीसरे करण में धर्म कदापि नहीं हो सक्ता है, श्रावक का खाना पीना पहरना ओढना आदि सब कार्य अव्रत में हैं ऐसा पाठ खुलासा श्री उववाई तथा सुयगडाङ्ग सूत्र में है, श्रावक को व्रत आश्रयी धर्मी और अव्रत आश्रयी अधर्मी श्री पन्नवणा भगवती सूत्र में कहा है इनही लिए श्रावक को धर्मी अधर्मी तथा व्रताव्रती कहा है, विवेकी जीवों को विचारणा चाहिए कि जो वो शब्द रूप गंध स्पर्श उपभोग परिभोग आगार रक्खा हैं जिन्हों की आशा वान्छा लाग रही है उनका संयोग वियोग करता है वो प्रथम करण सें अव्रताश्रव है उससें पाप लगता है दूसरेको भोगाता है जिससें द्वितिय करण और भोगने वाले की अनुमोदना करता है जिपसें करण पाप लगता है। अर्थात् भोग उपभोग के तीनूं करण सावद्य जोग है इनका त्याग करनें सें श्रावक के व्रत संवर होता है।

॥ ढाल तेहिज ॥

जघन्य मज्झम उत्कृष्ट जान । श्रावक गुण रतनां री खान ॥ त्यांरो खाणं पीणं अव्रत में जाणों।

तिण नें रूडी रीत पिछाणों ॥ २१ ॥ जघन्य श्रावकरे अव्रत घणेरी। उत्कृष्टा श्रावकरे अव्रत थोडेरी ॥ पिणते अव्रत आश्रव पापरो नालो। तिणसें पाप आवें दगचालो ॥ २२ ॥ श्रावक तप करै आणि हुलास। उपवास बेलादिक करै छमांस॥ सावद्य जोग रूंध्यां संवर हूवै रूडो। तपसें कर्म करै चकचूरो ॥ २३ ॥ तप पूरो हूवां, पछै अव्रत आगार। खावो पीवो ते सावद्य जोग व्यापार॥ तिणसें कर्म लागै छै आय। ते पाप होसी जीवनें दुःखदाय ॥ २४ ॥ पारणूं करै ते पहिले करण जाणो। करावे ते दूजै करण पिछाणो ॥ सरावण वालो है तीजे करणो। यां तीनांरो बुद्धिवन्त करसी निरणों ॥ २५ ॥ पहिले करण तो पाप बंधावे। तो दूजें करण धर्म किहांथी थावे ॥ तीजे करण धर्म नहीं छै लिगार। यां तीनांरा सावद्य जोग व्यापार ॥ २६ ॥ सावद्य जोगां सें लागै छै पाप। तिणसूं जिन आज्ञा न दे आप ॥ जो श्रावक नें जिमायां धर्म होता। तो अरिहन्त भगवन्त आज्ञा देता ॥ २७ ॥ कोई कहै श्रावक नें जिमायां धर्म। ते भूलगया अज्ञानी भ्रम ॥ पोते पिण जीम्यां

लागै पापकर्म, तो ओरां नैं जिमायां किम हो·
सी धर्म ॥ २८ ॥ कोई कहै लाडू खवायां धर्म।
वो तप करै तिणसें म्हांरा कटसी कर्म॥ तिणसें म्हे
ओरांनें लाडू खवावां । लाडूवां साटै म्हे उपवास
करावां ॥ २६ ॥ पाछै तो वो करसी सो उणनैं
होय। पिण लाडू खवायां धर्म नहीं कोय ॥ लाडू
खवायां तो एकान्ति पाप। श्रीजिन मुखसें भाख्यो
छै आप ॥ ३० ॥ श्रावक नें लाडूड़ा खवायां धर्म
जो होय । तो एहवो धर्म करै हरकोय ॥ बडा
बडा श्रावक हुवा धनवंत । इम लाडू खवाइने धर्म
करंत ३१ बडा बडा सेठ सेनापति ताहि। त्यांरै हुंती घणी
धर्मरी चाहि ॥ खवायां धर्म हुवै तो आघो नहीं का
डता । लाडू खवाइ काम सारे चाढता ॥ ३२ ॥
जो श्रावक ने लाडू खवायां धर्म । खवावण वाला
रै कट जाय कर्म ॥ तो चक्रिवर्त वासुदेव बलदेव ।
यो तो धर्म करता श्वमेव ॥३३॥ लाडू खवायां हुवै
जो धर्म । श्रावक नें लाडू खवायां कट जाय कर्म ॥
तो च्याऊंही जातिरा देव स्वमेव । एहवो धर्म करै
तत खेव ॥३४॥ जो एहवा धर्मथी शिव सुखहोय ।
तो देवता आघो न काढता कोय॥ एहवो धर्म करी

पूरता मन खांत । देव भवरी पावरा मोक्ष पोह-चंत ॥ ३५ ॥ पिण लाडूड़ा खवायां तो धर्म छै नाहिं । खाणों खवावणों अव्रत मांहिं । इण मांहि धर्म श्रद्धे ते भोला । त्यांरै मोह कर्म नां छैरे झ-कोला ॥ ३६ ॥ लाडू खवायां धर्म नहीं छै भाई । यातो उघाड़ी दीसै विकलाई । योतो लोलपणों जिव्ह्यारो स्वाद । पिण भारी कर्मा मांड्यो ए वाद ॥ ३७ ॥ खाणूं खवावणूं त्यागै सोय । जब सातमूं व्रत श्रावकरै होय । जबरुकसी ते आवता कर्म । तेहिज ऊजलो संवर धर्म ॥ ३८ ॥ तीनूं हीं करण जुवा २ कीजे । त्याग अनें आगार ओ-लखीजे । अव्रत में पाप जाणि छोडीजे । व्रत में धर्म जाणी व्रत लीजे ॥ ३९ ॥ मानव भवरो लाहोलीजे । दान सुपात्र नें निश्चय दीजे । धर्म नें कारज वेगो कीजे । सतपुरुष सेयां वान्छित सीझे ॥ ४० ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट ए तीन प्रकार के श्रावक कहे हैं वे श्रावक व्रतादी व्रतों को धारन हैं, जितने २ त्यागहैं वो उन उनका पच्चक्खाण करत हैं तथा जो जो आगार रखता है और बाते

पीते हैं वो सब अव्रत हैं वो रत्न नहीं हैं वो तो निर्मूल्य काच है अपणे पास रखणें सें भी काच और निरधन पणां है, दूसरे को देनें सें भी काच और निरधन पणां ही है, जो व्रतमयी रत्न सो आपणें पास में भी रत्न है तथा जिससें सर्व कार्य सिद्ध होते हैं और दूसरे को व्रत कराणे सें उसको भी अमूल्य रतन देना है जिससें उसके भी कार्य सिद्ध होते हैं अर्थात् जो जो त्याग हैं वो धर्म है जो जघन्य श्रावक है उसके अव्रत बहोत हैं उत्कृष्ट श्रावक है उसके अव्रत थोडी है अव्रत है सो आश्रव द्वार है यामें परनाला है जिस में होके पापमयी पानी आता है उसको बंधकरनें सें चारित्रमयी निज गुणोत्पन्न होता है, उपवास बेला तेला षटमास आदि तप करने सें खाना पीनादि सावद्य जोग रूंधते है वो व्रत संवर है तथा भूख त्रषादि समपरिणामों सें सहन करता है जिससें अशुभकर्म क्षय होता है सो निरजरा है तप पूरण हुयें सें जिस २ वस्तुवों का भोगोपभोग करने का आगार है वो भोगता है खाता है पीता है अनेक तरहें के सावद्य जोग व्यापार करता है जिससे पाप कर्म लगते हैं वो जीवको दुःखदायी है, पारणा किया सो प्रथम करण दूसरे को पारणा कराया वो दूसरा करण है ऐसे ही अनुमोदना अर्थात् अच्छा जाना सो तीसरा करण है, इनका निर्णय बुद्धिवान मन सहज में करसक्ते हैं विचारणा चाहिए कि प्रथम करण में पाप है तो द्वितीय और तृतीय करण में धर्म कैसे होगा, तात्पर धारणा पारणा करणे वाला सावद्य जोग सेता है और उसकी जिन आज्ञा नहीं है अधर्म हैं तो धारणा या पारणा कराणे वाले को धर्म किसतरहें होगा यदि खिलाने में धर्म है तो खाने में भी धर्म है जो खाने

में धर्म नहीं है तो फिर खिलाने में भी धर्म नहीं है क्योंके अधर्म कराने में धर्म कैसे होगा, इस लिए ही श्रावकको खाना खिलाना अनुमोदना इन तीनूं करणों की श्री जिनेश्वर की तथा साधू मुनि राजों की आज्ञा नहीं हैं यदि आज्ञा होती तो अब साधू मुनिराज श्रावक के खाना खिलाना और अनुमोदनें की आज्ञा क्यों नहीं देते परंतु शुद्ध निर्ग्रंथ साधू तो आज्ञा नहीं देसक्ते हैं और इस सावद्य कार्य को मन वचन काया कारिके अच्छा भी नहीं जानते हैं, जो कोई श्रावक को जिमाने में धर्म जानते हैं वो अज्ञान हैं उनके मोह कर्म की छाक वहोत है इसलिए अनादि कालसें खाना और खिलाने को अच्छा समझ रहे हैं, समदृष्टी मनुष्यके तो खाना और खिलाने का त्याग करणा से सातमां व्रत होता है, इसलिए सत गुरू वों का कहना है व्रत अव्रत को यथार्थ ओलखना कारिके अव्रत को छोड व्रत अंगीकार करो अव्रत में अधर्म और व्रत में धर्म समझो ए मनुष्य भव पाने का लाह लयो कुगुरूवों को छांडकारि सुगुरूवों को सेवो और सुपात्र दान दो धर्म कार्य जल्द करो जिससें जीवका भला होगा।

॥ इति सप्तम व्रत भावार्थ ॥

॥ अथ पंदरह कर्मादान ॥

॥ दोहा ॥

उपभोग परि भोगनूं। सातमूं व्रत प्रधान।
तिण मांहीं उपदेसीया। पंदरह कर्मादान ॥१॥

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

ईंट लीहाला सोनार ठठारा । भड़भूंज्या कुम्भकार लोहारा । ए कर्म करीने पेट भरीजे । तेह अंगालिक कर्म कहीजे ॥ १ ॥ वेचैं साग पात कंदमूल । फल बीजादिक धाननें तंदूल । वेचैं फूलादिक सर्व बनराई । ते बरण कर्म कहीजेरे भाई ॥ २ ॥ वेचैं गाडादिक रथ कराई । चोकी पाट पलंग बणाई । किंवाड थंभादिक ते वेचावै । ए तीजो साडी कर्म कहावै ॥ ३ ॥ हाट हवेली भाडै थापै । रोकड नाणूं व्याजें आपै । गाडादिक भाडै दे जेह । भाडी कर्म कहिजे तेह ॥ ४ ॥ वेचैं नालेरादिक फोडी । वलि आखरोट सोपारी तोडी । पत्थर फोड दलै पीसै धान । पांचमूं फोडी कर्मादान ॥ ५ ॥ कस्तुरी कवडा गज दन्ता । मोती अगर पाप अनन्ता । चर्म हाड सींग जोहार । छट्टो कर्मादान ए धार ॥ ६ ॥ सातमूं भेद मैण सल आल । वेचै लाख गुली हरिताल । कसूंबादिक रांगण पास । दोप घणो कह्यो जिन तास ॥ ७ ॥ मधु मांस मांखणनें दारू । भारी

विगय कही जिन च्यारूं। दूध दही घृत तेल गुड़ जाण। आठमूं ए रस वाणिज्य पिछाण ॥ ८ ॥ वेचैं ऊंट गधा वैल गाय। घोडा हाती भैंस मंगाय। ऊन रूई रेसम थान वणाय। केस वाणिज्य ए नवमूं थाय ॥ ६ ॥ सींगी मोरोनें श्राफू सार। लीलो थूथो सोमल खार। हरवंसी नर वंसी विगाजै। ए दसमूं विष वाणिज्य कहिजै ॥ १० ॥ तिल सरस्यूं प्रमुख पिलावै। इक्षू रसनां घाण कढावै। जंत पीलण इग्यारमूं कर्म। करतां वधै घणां अधर्म ॥ ११ ॥ कान फडावै नांक विंधावै। पापी करिया बैल करावै। वारमूं कर्मादान निलच्छन। व्रत धारी नें लागे लंछन ॥१२॥ वालै गाम नगर करि लाय। अटव्यादिक में दव दे लगाय॥ वालै मूरडानें दव आपे। तेरमूं कर्म इसी पर व्यापै ॥१३॥ चवदमूं भांजै नहीं द्रह तीर। खेतमांहि आणी घालै नीर ॥ सर द्रह तलाव बूरे सोपंत। एकर्म करी जीव नरक पडंत ॥१४॥ साधु विना सघला पोषीजे। पन्नरमूं असंजती पोष कहिजे ॥ रोजगारले त्यां ऊपर रहवै। खाणं पीणं असंजती नें देवै ॥१५॥ ए पंदरह कर्मा-

दान बिस्तार । मर्याद बांधि करै परिहार ॥ ए पंद्रह कह्या सावद्य जोग व्यापार । करै आजीवका चलावण हार ॥१६॥

॥ इति सप्तम व्रतम् ॥

॥ भावार्थ ॥

उपभोग परिभोग के त्याग करै सो सातमाव्रत कह्या जिसमें पंद्रह कर्मादान कहे सो कहते हैं अंगालि कम्मे १ अर्थात् अंगालिक कर्म ईंट कोला कली चूना भट्टी वगेरह में बनाना तथा सोनारका काम ठठेरेका काम भड़भूंजाका काम लोहारका काम तथा कोयला आदि अग्नि द्वारा काम करना उसे अंगालिक कर्म कहते हैं । वणकम्मे २ अर्थात् वनस्पति हरी नीलोती साग पात फल फूल का काम करना तथा वेचना । साडि कम्में ३ अर्थात् साटी कर्म काष्टका गाडा रथ चौकी तखते पर्यंक कपाट स्थम्भ आदि लकड़ीकी अनेक वस्तुओंको बना बनाके वेचना । भाडी कम्मे ४ अर्थात् भाड़ाकर्म दुकान मकान जमीन गाडा गाडी प्रमुखको भाड़े देना तथा रोकड़ रुपयादि को ब्याजू देना । फोडी कम्मे ५ अर्थात् तोड़न फोड़नेका काम नारेल सोपारी आखरोट पत्थर आदिको तोड़ तोड़के वेचना तथा अनाजको दलना पीसना आदि । दंत वणिज्जे ६ अर्थात् दन्तादिका व्योपार—कस्तूरी केवडा गज दन्त मोती चमड़ा हाड आदिका व्यापार-लक्ख वाणिज्जे ७ अर्थात् लाख माल मोम खगुली हरिताल आदिका व्यापार । रसवाणिज्जे ८

अर्थात् घृत गुड तेल दूध दही तथा मदिरा मान्स मांखण सैत आदिका व्यापार। केस वाणिज्ज ९ अर्थात् केसोंके निमित्त ऊंट गधा गाय बैल घोड़ा हाती आदिका व्यापार तथा ऊन रुई रेसम आदिका व्यापार। विष वाणिज्जे १० अर्थात वि-षका व्यापार-सींगी मोरा अमल आक पोस्तडोडी लीलाथूता सोमलखार हरवंशी नरवंमी आदि विषका वाणिज्य। जंत पिलणियां कम्मे ११ अर्थात् जंत्र घांणी कल मसीन आदिमें तिल सरसूं प्रमुखको पीलना पिलाना तथा सांटा आदिका घांणा कढवाना। निलच्छन कम्मे १२ अर्थात् कानफड़ाना नांक बिंधाना तथा बलद प्रमुखको वादी करना। दवक वाणियां कम्मे १३ अर्थात् ग्राम नगर अटवी आदिमें अग्नि लगाना सर दह तलाव सोषणियां कम्मे १४ अर्थात् सरद्रह तलाव नदी प्रमुखको पूरना सोषन करना या नाला मोरीको खोल-नादि। असईजण पोषणियां कम्मे १५ अर्थात् असती जन ते असंजतीको पोषणेका काम साधु बिना सबको पोषना तथा असंजती जीवोंको पोषनेके निमित रांजागर लेके रहना। उ-परोक्त पंदरह कर्मादान कहे सो सर्व कर्म बंधनके कारण है ए श्रावकको छोडणे योग्य हैं परंतु आदरणे योग्य नहीं है सर्वथा न छोडे जाय तो इनकी मर्याद करिके उपरान्तिके त्याग करे सो व्रत हैं आगार रखना सो अव्रत है जिससे पाप कर्म लगते हैं।

॥ इति सप्तमव्रत भावार्थम् ॥

॥ अथ अष्टम् अनर्थ दंड परिहार व्रत ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत पूरो थयो । हिव आठमांनूं विस्तार ॥ अर्थ अनर्थ ओलखवा भणीं । तेहनूं सुणों विचार ॥१॥ सातव्रत आदरतां थकां । बाकी अव्रत रहीछै ताय ॥ तिणसैं निरन्तर जीवरै । पाप लागै छै आय ॥२॥ तिण अव्रतरा दोय भेदछै । तिणमें एक अनर्थ दंड जाण ॥ दूजी अव्रत अर्थ दंड तणीं । त्यासूं पाप लागै छै आणि ॥३॥ अर्थ ते मतलव आपरै । सावद्य करै विविद प्रकार ॥ अनर्थ ते मतलब विना । पाप करतां डरै न लिगार ॥४॥ पाप करै अर्थ अनर्थ कारणें । त्यानें रूडी रीत पिछाण ॥ अर्थ दंड छोडणूं दोहिलो । पिण अनर्थरा करै पचक्खाण ॥५॥ अनर्थ दंड तणां भेद अतिघणां । ते पूरा कह्या न जाय ॥ थोडासा प्रगट करूं ते सुणिजो चित ल्याय ॥६॥

॥ भावार्थ ॥

अब आठवां व्रतमें अनर्थ दंडके परिहार करणेकी विधि बताते हैं पूर्वोक्त सातव्रत आदरते जो अव्रत रही उससें जीवके

निरन्तर पाप लगते हैं जिसमें एकतो अर्थ दूसरा अनर्थ, अर्थतो अपनें मतलबके लिए और अनर्थ बिना मतलब सावद्य जोग करना, ग्रहस्थसे यदि अपनें मतलबके लिए पाप करनेका त्याग न हो सके तो बिना मतलब पाप करनेका त्यागतो अवश्य करना चाहिए जिससें अनर्थ दंडकी अव्रत मिटै, अनर्थ पाप अनेक तरहेंसे होता है परन्तु ईहां अलपसा वर्णन करिके कहते हैं।

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

पहिलो भेद कह्यो अपध्यान। तिणथी बांधै अनर्थ खान॥ बीजो भेद प्रमादज आखै। घृतादि ठाम ऊघाडा राखै॥१॥ सस्त्र जोड करै विस्तार। पाप उपदेस देवै विविध प्रकार॥ ए अनर्थरा करै पच्चख्खान। सूधी पालै जिनवर आंणा॥२॥ अनर्थ दंड केम कहिजे। अर्थ दंड सेती उलखीजे॥ तेहना भेद विवध प्रकार। संचेप मात्र कहूं विस्तार॥३॥ मांठा ध्यानरा दोय प्रकार। जे जगमें ध्यावै नरनार॥ आर्त रौद्र ध्यान ध्यावै लोग। पामै विवध हर्ष नें सोग॥४॥ शब्दादिक इन्द्रियां नां भोग। तेहनूं वंछै संयोग वियोग॥ रोगादिक लागै असातापता। भोग भोगवनां लागै ममता॥५॥ इत्यादिक जीव रचै

नें विरचै । आप अर्थ कुटुम्ब नें परिचै ॥ ठाकुर चाकर सगा स्नेही । वोहरानें धुरया आदि देई ६ जिण सुखिये सुख वेदै आप । तिण दुःखयें पामें सोग संताप ॥ ते पिण टालै समता आंण । अनर्थ ध्याचारा पचक्खान ॥७॥ रौद्र ध्यान हिन्सा जे ध्यावै । कूट चोरी वंदीखान दिरावै ॥ अर्थ करै पिण धूजै तन्न । अनर्थ ध्यान तजै एक मन्न ॥८॥ घृतादिक पिण विणज करंतां । धूमादिक कारज अण सरतां । इण विधि अर्थ उघाडा राखै त्हाई । तिण रा जतन करै चितलयाई ॥६॥ प्रमादनें बस आलस आणे । उघाडा राखण रा पचखांण । घरटी ऊखल मूसल राखै । म्हारै सरे नहीं इण पाखै ॥ १० ॥ अनर्थ राखण रा पचखाण । एहवो व्रत करै मन जाण । अर्थ पिण राखंता शंकाय । अनर्थ पिण नही राखै त्हाय ॥ ११ ॥ भाई भतीजा चाकर पेख । त्यांने दे पापरा उपदेस। खेती वाणिज्य सोदा करो भाई । युं देठे खासी किणरी कमाई ॥ १२ ॥ बुद्धिवन्त नर ज्ञान सें देखै । कहितां लागै पाप विसेख । तो अनर्थ कुण घरमें घालै । । तिण थी कर्मज मैला

भाखै ॥ १३ ॥ जस कीर्तिमान वड़ाई काजै वलि सरमां सरमीं लोकांरी लाजै । वलि घर उदारणारे तांई । हिन्सादि करै ते अर्थ दराड मांहीं ॥ १४ जिण कर्तव्य कियां करै लोक भराड । ते कर्त्तव्य छै अनर्थ दराड । छ छंडी राखी ते अर्थ दराड मांही । त्यांरै काजै हिन्सादि करै छै ताहि ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

आत्मा दो प्रकार सें दराड पाती है एकतो अर्थ दूसरा अनर्थ करिके पाप लगता है जिस अनर्थ दराड के च्यार भेद है–अपध्यान १. हंसपयाणं २ प्रमाद ३ पाप कर्मका उपदेस ४ ए च्यार प्रकार सें जीव दण्डित होता है, अपणे मतलब सें करे सो अर्थ दराड है और विनामतलब करे वो अनर्थ दराड है, अब उपरोक्त च्यारूं भेदों का संक्षेप में वर्णन करते हैं– अपध्यान के दो भेद एकतो आर्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, शब्दादिक पंच इन्द्रीयों की तेवीस विषयकी इच्छा करना प्रिय वस्तुवों का संयोग की वाञ्छा करना और अप्रिय वस्तुवों का वियोग इच्छना, निरोगपना सुख साता में खुशी और अरोगपना असाता से नाराज होना सो आर्तध्यान है, परजीव की हिन्सा [illegible] झूठ बोलना दूसरको दुःख देना कैद करनादि वान्छै सो रौद्रध्यान है, यह प्रथम भेद कहा। हिन्सा में प्रवर्तना सस्त्र को धारना सीना करना यह दूसरा भेद है, प्रमाद वश होके

व्रत के तेल आदिके वरतनों को उघाडा रखना जिससें अनेक जीवों की हिन्सा होय तथा चक्की ऊखल मूसल जंत्र आदि-को देखे विना चलाना सो तीसरा भेद है। और पाप कर्म क-रनें का उपदेस जैसें भाई भतीजा आदि दूसरे को कहना वैठे वैठे क्या करते हो खेती करो कूवा तालाव खोदो वाणिज्य व्यापार करो आदि अनेक तरहें सें पाप का उपदेस देना ये चोथा भेद जानना। उपरोक्त ये च्यारूं प्रकार सें अपणें अर्थ करै सो अर्थ दण्ड और विना अर्थ करै सो अनर्थ दण्ड है, अपणी वडाई सोभाके निमित तथा अभिमान के वस या सरमां सरमी लोकों की लाज सें स्वार्थ वस होके उपरोक्त च्यारूं के करनें सें पाप लगता है परन्तु वो तो अर्थ दण्ड है, बिना मत-लब या जिस कर्तव्य करनें सें लौकिक में निन्दा हो सो अनर्थ दण्ड है, इसलिए श्रावक को अनर्थ दण्ड करने का त्याग कर-ना चाहिए तथा अर्थ दण्डकाभी मर्याद उपरांत परिहार कर-ना वाजव है, श्रावक अर्थ दण्ड का या अनर्थ दण्ड का त्याग किया सो व्रत है आगार रक्खा सो अव्रत है।

॥ ढाल तेहिज ॥

सुयगडा अंग अध्ययन अठारमां मंझार।
अनर्थरा आठ कह्या छै आगार। आतमा न्याती
लारै काम। हिन्सादिक करै छै ताम ॥ १६ ॥
आधार ते घर हाट दिक काम। परिवारनें दास
दासी नाम। मंत्री नाग भूत यक्ष देव। त्यांरे

निमित हिन्सादि करै स्वमेव ॥ १७ ॥ यह लोक नें परलोग । जीवणूं मर्णूं नें काम भोग । यां रे अर्थ वान्छा कियां पाप लागै । अनर्थ कियां अर्थ बान्छा कियां पाप लागै । अनर्थ कियां आटमूं व्रत भागै ॥ १८ ॥ असंयती जीवांरो जीवणं चावै । असंयती जीयां सें हर्षित थावै । अर्थे वंछ्यां तो अर्थ पाप लागै । अनर्थ वंछ्यां आठमूं व्रत भागै ॥ १९ ॥ असंयतीरो मरणूं चावै । अथवा त्यांनें मारे मरावै । अर्थे मार्यां मरायां पाप लागै । अनर्थ मार्यां मरायां व्रत भागै ॥२०॥ ग्रहारथ नें काम भोग भोगायवो चावै । अथवा त्यांनें काम भोग भोगावै । अर्थे भोगायांथी पाप लागै । अनर्थे भोगावियां व्रत भागै ॥ २१ ॥ ग्रहारथ नैं उपभोग परिभोग भोगावै । तिण निश्च पाप कर्म बंधावै । अर्थे भोगायां तो अर्थ पाप लागै । अनर्थ भोगायां आटमूं व्रत भागै ॥२२॥ ग्रहारथरो काम करै अंस मात । तिणरे निश्चय पाप लागै साक्षात । अर्थे कियां तो अर्थ पाप लागै । अनर्थ कियां आटमूं व्रत भागै ॥ २३ ॥ आठ ठाहि में कितनूं इक केहूं । अर्थ अनर्थ दण्ड नें केहूं । तिण में अर्दरी अव्रत रही छै जांण ।

अनर्थ दण्ड तणां पच्चखाण ॥ २४ ॥ यामें रूडी रीत पिछाणी लीजे । करण जोग घाली व्रत कीजे । यामें रुकी सेरी तिण मांहि धर्म । छुटी सेरी तेहिज अधर्म ॥ २५ ॥ आठमां व्रतरो वहोत विचार । यो अल्प मात्र कियो विस्तार । हिव नवमूं व्रत कहुं छूं ताय । सांभल ज्यो भवियण चित ल्याय ॥ २६ ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

सुयगडा अंग सूत्र में अनर्थ दण्ड के आठ प्रकार के आगार श्रावक के कहा है—आएहिउवा १ अर्थात् अपणी आत्मां के हेतु, नाएहेउवा २ अर्थात् न्यातीलों के हेतु, आगारे हेउवा ३ अर्थात् अपणें घरके हेतु, परिवारे हेउवा ४ अर्थात् परिवार पुत्र पौत्रादि तथा दास दासी के हेतु, मित्तहेउवा ५ अर्थात् मंत्री के हेतु, नाग हेउवा ६ अर्थात् नाग देवता के हेतु, भूए हेउवा ७ अर्थात् भूत के हेतु, जक्ख हेउवा ८ अर्थात् यक्ष के हेतु, ये आठ प्रकार के आगार उपरान्त श्रावक के अनर्थ दंड के त्याग हैं सो आठमां व्रत है, व्रत है सोही धर्म है, आगार रक्खा सो अव्रत है अपणी कमाई है, किन्तु अपणी आत्मा के निमित्त यावत् यक्ष निमित्त जो जो हिन्सादि करता है उस में धर्म नहीं है, एहलोक परलोक जिवितव्य मरण काम भोग इन पांचूं की वञ्छनां अपणें मतलब के लिए करनें से पाप लगता है और बिना मतलब किये आठमां व्रत का भंग होता है, ऐसें

हों असंयती जीवों का जीतव्य मरना अपणों अर्थ के लिए वान्छने में पाप कर्म का बन्ध होता है और विना अर्थ वान्छने में आठवां व्रत खण्ड होता है, गृहस्थि को काम भोग भोगाने की इच्छा अपणें स्वार्थ के लिए करे या भोगावे तो पाप, विना स्वार्थ गृहस्थि को काम भोग भोगावे तो आठवां व्रत का भंग, तात्पर गृहस्थि का अंश मात्र काम करणा कराना अनुमोदना इन तीन् करणों में पाप है श्रावक करता कराता है सो धर्म नहीं है संसारिक व्यवहार है। धर्म तो वोही है कि जितने २ त्याग हैं। स्वामी भीखनजी कहते है कि अव्रत कहि कहके किसमा कहे अर्थ और अनर्थ इन दोनकारों में पाप लागता है इस लिए श्रावक के अनर्थ पाप करने का त्याग आठमां व्रत में है, इस आठमां व्रत को अच्छी तरहें समझ के यथाशक्ति करण योग युक्ति त्याग करना चाहिए जिसमें अपना व्रत भंग न हो जो सरी रुकी है सो धर्म है नहीं रुकी वो अधर्म हैं, ॥ इति ॥

॥ अथ नवमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणु व्रत पालतां । गुण व्रत देश कहाय । शिक्षा व्रत च्यारूं चोकड़ी । कहै उपमां न्याय ॥१॥ जिम देवल कलसो चढै । मुकुट मस्तक सोय । इम अणुव्रती जीवड़ा । शिक्षा व्रत पालंत ॥ २ ॥ तत आदें पहिली कहा । जाव जीव

लगजाय । शिखा व्रत च्यारू तणां । विविध पणें पचखाण ॥ ३ ॥ सामायक महुरत येकनीं । जो करै चित ल्याय । देशावगासी व्रत नां । जेम करै तिमथाय ॥ ४ ॥ पोसो हुवै दिन रातरो । ध्यावै निरमल ध्यान । बारमूं व्रत शुद्ध साधुनें । प्रतिलाभ्यां थी जान ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच अणू व्रत अर्थात् महाव्रतों से छोटे, तीन गुण व्रत याने पंच अणूं व्रतों को गुण दायक ए आठ व्रत तो कहे अब इन व्रतों के शिखा समान च्यार शिखा व्रत कहते हैं, जैसें मंदिर के कलश और मस्तक के मुकुट है वैसें ही आठूं व्रतों के ये च्यार व्रत हैं, पहले व्रत सें आठमां व्रत तक के त्याग तो जावज्जीव पर्यंत होते हैं किञ्चित् काल के नहीं होवे और इन च्यारूं व्रतों में प्रथम व्रत तो येक महूरत का है, दूसरा जितना काल के करें उतनां हीं काल का होता है, तीसरा दिवस रात्रि प्रमाण होता है, और चौथा शिखा व्रत शुद्ध साधू मुनिराजों को निर्दोष आहार पानी आदि चवदह प्रकार का दान देनें सें होता है, जिस में प्रथम शिखा व्रत कहते हैं ।

॥ ढाल ॥

[मन करो काया माया कारमी ॥ एदेशी ॥]

सामायिक समता पणों । सावद्य जोग पचखाण जी । काल थकी महूरत्त एकनीं । दुविहं ति-

विहंणां जाणजी ॥ शिखाजी व्रत आराधिए ॥ १ ॥ उत्कृष्टे भांगेकरी । तीनकरण तीन जोग जी ॥ ग्रहवासतणी वातां तणों । न करै हर्ष नें सोगजी ॥ शि ॥ २ ॥ उपगरण सामायक करतां राखीया ॥ तिण उपरान्त किया पचखाणजी ॥ राख्याते अव्रत परिभोगरी । तिणरो पाप निरन्तर जाणजी ॥ शि ॥ ३ ॥ जेउपग्रण सामायी में राखीया । त्यांरो पिण करै प्रमाणजी ॥ बाकी तीन करण तीन जोगसूं । पांचुंही आश्रवनां पचखाण जी ॥ शि ॥ ४ ॥ ते उपग्रहण पहरै ओडै बावरै । बिछावणादिक करै बारंबार जी । ते शरीर री साता कारणें । तेतो सावद्य जोग व्यापार जी ॥ शि ॥ ॥ ५ ॥ वलि गहणां आभरण कनें रह्या ॥ ते पिण अव्रतमें जाण जी ॥ तिणरो पाप निरन्तर लागैछै । सामायिक में पिण लागैछै आंण जी ॥ ॥ शि ॥ ६ ॥ ते गहणां आभ्रणरा जतन करै । त्यांरैं राजी हुवै तिणवार जी ॥ आघा पाछा समारै तिण अवसरै । सावद्य जोग व्यापार जी ॥ शि ॥ ७ ॥ उपग्रण गहणां कनें राखीया । तेतो नहीं आवै समाइरै कामजी ॥ कामतो आवैपरि-

भोगमें । सुखसाता सोभादिक तामजी ॥ शि ॥ ॥ ८ ॥ सामाई री दीधीजिन आगन्यां । ते सामाई छै संवर धर्म जी ॥ उपग्रण गहणां परिभोगव्यां ॥ तिणसें तो लागै छै पापकर्म जी ॥ शि ॥ ९ ॥ समाई में श्रावक री आतमां। अधिकरण कही जिनरायजी ॥ भगवती रै शतक सातमें। पाहिला उद्देसा रै मांयजी ॥ शि ॥ १० ॥ अधिकरण ते सस्त्र छकायनों । तिणरो सायगे करै अंसमातजी ॥ तिणरी सार संभार जतन करै । ते सावद्य जोग साक्षातजी ॥ शि ॥ ११ ॥ कपडो ओढै पहरै बावरै । वलि वैयावच करै तायजी ॥ तिण अधिकरणनें सांतरो कियो । तिणरी आज्ञा नहीं दे जिनरायजी ॥ शि ॥ १२ ॥ अंस मात्र शरीर रो कारज करै । तेतो सावद्य जोगछै तायजी । तिणसुं पाप लागेछै जीवरै । तिणरी आज्ञानहीं देवै जिनराय जी ॥ शि ॥ १३ ॥ हालवो चालवो शरीर रो। सुखसाता काज करै जाण जी ॥ ते सावद्य जोग श्रीजिन कह्या । तिणसूं पाप कर्म लाग छै आणि जी ॥ शि ॥ १४ ॥ जिण कर्तव्य कियां जिन आज्ञा नहीं । ते सावद्य जोग साक्षात

जी ॥ जिण कर्तव्य कियां छै जिन आज्ञा । ते निरवद्य जोग विख्यातजी शि ॥ १५ ॥ उपग्रण गहणां शरीर नां । जतन करै समाई मंझार जी ॥ त्यानें जिन आज्ञा नहीं सर्वथा । ते सावद्य जोग तणां व्यापार जी ॥ शि ॥ १६ ॥ कनै राख्या त्यांरा जतन करै । यो राख्यो समाई में आगार जी ॥ समाई करतां जे नहीं राखीया । त्यांरा जतन नहीं करै लिगार जी ॥ शि ॥ १७ ॥ श्रावक रा उपग्रण अव्रत सभै । वाह्या उववाई नें सुयगडा अंगजी ॥ त्यानें सेवै सेवावै ते सावद्य जोग छै । तिणरी आज्ञा नहीं दे जिनरंग जी ॥ शि ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक अर्थात् याने समभाव रखना समता रखना इसको सामाई कहते हैं येक महूरत तक सावद्य जोगके साग करे जघन्य दो करण तीन जोगमें उत्कृष्ट तीन करण तीन जोगमें जानना. सामाईक में ग्रहस्थाश्रमकी बातें निन्दा विकथादि नहीं करना और जो कपडा आदि उपग्रण सामाई में [illegible] हैं सो [illegible] है आगार उपरान्त सावद्य जोगके साग किये हैं सो सामाईक है जिससे श्रावकके संवर होता है बाकी जो जो उपग्रण तथा गहणां रखता है सो सावद्य जोग है जिसमें पाप कर्म निरन्तर लगता है क्यों के जो कपडा तथा गहणा आदि आगार रखता है सो अव्रत है इनसबोंकी सार संभार

करता है विछावणादि बार बार करता है सो शरीरकी साता के लिये हैं उससें सामाइक पुष्ट नहीं होती इसलिये सावद्य जोग व्यापार है, गहणा कपडादि जो रक्खा है वो सामाइकके काम नहीं आते हैं वोतो परिभोग के काम आते हैं अथवा अपणी सोभा के निमित्त पहरते ओढते हैं, सामाइक की श्रीजिनेश्वरदेवों की आज्ञाहै किन्तु उपग्रण कनें रक्खा उसकी आज्ञा नहीं है इसलिए उन्हे परिभोगव्यां पापकर्म लगता है, श्री भगवती सूत्रके सातमां शतक पहला उद्देसायें सामाइक में श्रावककी आतमा अधिकरण कहि है और अधिकरण है सो छकाय जीवोंका शस्त्रहै तो शस्त्रकी सार संभार करेसो निरवद्य जोग कैसे हो सकतेहैं वो तो सावद्य जोगही है इसलिए जिन आज्ञा नहीं है, तात्पर जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है निरवध जोग है और जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य जोग है।

॥ ढालतेहिज ॥

कोई कहै सामाइक कीधीतेहनें । सावद्य जोगपचखाणजी ॥ तिणरै पापरो आगार किहांथी रह्यो। कोई एहवी पूछाकरै आंणजी ॥ शि ॥ १६ ॥ तेहनें जवाब इम दीजीए । सर्व सावद्यरा नहीं पचखाणजी ॥ सर्व सावद्यरात्याग साधांतणें । तेहनी करो पिछाणजी ॥ शि ॥ २० ॥ छ भांगा समाई में पचखिया । तिणरै तीन भांगारो आगारजी ॥ तिणरै पाप लागैछै निरंतरै । एहवा सावद्य जोग

व्यापारजी ॥ शि ॥ २१ ॥ तिणरे पुत्रादिक हुआं हर्ष हुवे । मूवां गयां होवे सोगजी ॥ इत्यादि आगार समायिक मभे । एहवा समायिक में सावद्य जोगजी ॥ २२ ॥ गहणां कपडा राख्या तेहना । जतन करे समाई रे मांयजी ॥ तेपिण सावद्य जोग छै । तिणरी आज्ञा न देवै जिनरायजी ॥ शि ॥ २३ ॥ शरीर कपडादिक तेहनां । जतन करै समायिक मांयजी ॥ लाय चोरादिकराभयथकी । एकान्त स्थानक जयणा सें जायजी । शि । ॥ २४ ॥ तेपिण सावद्य जोगछै । आगार सेयो समाई मांहिजी ॥ सामायिक में समता राखणी । चित न चलावणु ताहिजी ॥ शि ॥ २५ ॥ लाय सर्पादिकरा भयथकी । जयणासूं निसर जाय भागजी ॥ पासती मनुष बैठाहुवे । त्यांनें तो नहीं लेजावे बाहर जी ॥ शि ॥ २६ ॥ आपरो तो आगार राखीयो । औरां रो नहींहै आगारजी ॥ औरां नें त्याग्या समाई मभे । त्यांनें किण विधि लेजावे बाहरजी ॥ शि ॥ २७ ॥ लाय चोरादिक रा भय थकी । राख्या ते द्रव्य ले जायजी ॥ पासती कपडादिक हुवे घणां । त्यानेंतो बाहर न ले

जावै त्हायजी ॥ शि ॥ २८ ॥ राख्याते द्रव्य ले जावतां । सामाई ध्रे भंग न थायजी ॥ त्याग्या छै त्यानें ले जावतां । समाई रो व्रत भाग जायजी ॥ शि ॥ १६ ॥ तिणसूं सर्व सावद्य जोगरा । समाई में नहीं पचखाणजी ॥ आगार उपरान्त सावद्य जोगरा । पचखाण किया छैं पिछाणजी ॥ शि ॥ ३० ॥ तिणसूं त्याग किया तिके । ते सावद्य जोगरा पचखाणजी । त्याग नहीं सर्व सावद्य जोगरा । ते तो सारा साधु तणे जाणजी ॥ शि ॥३१॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक में सावद्य जोग के साग हैं सो सर्वतः नहीं है देशतः है, तब कोई कहै समायिक पचखते वक्त सावद्य जोग के साग करते हैं उस वक्त कोनसा पाप करणे का आगार है एसा कहै उन्हे जवाव देना चाहिए कि साधूकेतो "सव्वं सावज्भं जोगं पचख्खामि" ऐसा पाठ है और श्रावक के सामायिक में "सावज्भं जोगं पचख्खामि" ऐसा पाठ कहा है तो खुलासा मालूम होगया कि श्रावक के सामायिक में सर्व सावद्य जोग के साग नहीं है, तथा छ भांगासें सामाइक करनेसें तीन भांगे आगार रहा सो सावद्य है उनका पाप अव्रत का निरंतर जीवके सायाइक में लागता है अर्थात् अनुमोदनेंका मन वचन काया आगार है,पुत्रादि होनेकी खवर सुनके हर्ष और मरनेकी वा खोये गयेकी सुनके सोग आता है और जो गहना

कपड़ा सामाइक में पहनाहुआ है आगार रक्खा है वो परिभोग है उसे भोगता है सो अव्रत सेता है तथा उनकी सार सँभार करता है वोभी सावद्यही जोग है, शरीरका यतन करता है लाय चोर आदिका भयसें जयणापुर्वक एक स्थानसें दूसरे स्थान जाता है सो ग्रहस्थके जाने आनेकी जिन आज्ञा नहीं है इत्यादि अनेक कार्य जो जो जिन आज्ञा बाहरका कार्य सामाइक में करता कराता है सो सब सावद्य जोग है जिससें पाप कर्म लगता है, लाय चोर आदिकके भयसें सामायिक में येक जगें सें दूसरी जगें में जाता है जिससें सामाइक का तो भंग नहीं होता क्योंके एह आगार रक्खा हुआ है परन्तु सावद्य जोग है सो तो पाप लगता है, पास में और दूसरे बैठे हुए हैं उनको बाहर लेजाना आगार नहीं है इसलिए उनको बाहर नहीं लेजा सक्ता, जो जो कपड़ादि उपग्रण आगार रक्खा है उन्हेंहीं लेजाता है पास में अपने कपड़े आदि अनेक वस्तु पड़ी है लेकिन वो आगार नहीं इसलिए उन्हें नहीं लेता है, जो आगार रक्खा है उनहीं की सार संभार करता है इसवास्ते श्रावक के सर्वतः सावद्य जोगोंका त्याग सामायिक में नहीं है ।

॥ ढाल तेहिज ॥

[illegible] [illegible] सामाई सभे । तेतो पाहिलै क- रणा लिया [illegible] ॥ ते ओरां नें भोगवासी लिया [illegible] । [illegible] किया पचखाणजी ॥ [illegible] ॥ [illegible] [illegible] [illegible] तिण उपरान्तम । सग-

त्यांरा किया पच्च खाणजी ॥ खेत्र थी सर्व क्षेत्र मझै । काल थी मऊरत एक जाणजी ॥ शि ॥ ३३ ॥ भाव थकी राग द्वेष रहित छै । जब संबर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीतै समाई ओलखो करै । जब सामाइक हुवै तायजी ॥ शि ॥ ३४ ॥ अवशर सघला नैं त्याग दिया । त्यांसू करै संभोगजी ॥ तिणसूं भांगै समाई व्रत तेहनूं । इणरा बर्त्या छै सावद्य जोगजी ॥ शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई में सामाई तणूं । कारज करणू राख्यो छै आगार जी ॥ तिणरो कार्य कियां समाई भागै नहीं । तिणरो पिण करै बिचारजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई में मांहो मांहि कारज करै । तैतो सूत्रमें नहीं छै तायजी ॥ ते निश्चय थापणी आवै नहीं । ज्ञानी वदे ते सत्य वायजी ॥ शि ॥ ३७ ॥ केई कहें समाई में राखी पूंजणी । राखीते दयारै कामजी ॥ तिणरो जवाब सूणू विवरा सुद्धे । चित राखी एकंत ठामजी ॥ शि ॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजै समाई मझे । मात्रादि परठै पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नहीं । तिणमें धर्म कहै ते अबूझजी ॥ शि ॥ ३९ ॥

शरीर पूंजे परठै मांत्रो । ए शरीरादिकरा छै काजजी ॥
जो धर्म तणु कारज हुवे । तो आज्ञा देवै जिन
राजजी ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणु परठणु करै न-
हीं । कायस्थिर राखै येक ठामजी ॥ हस्तादिक
बिना हलावियां । रहणी नहीं आवैछै तामजी ॥
॥ शि ॥ ४१ ॥ वले असाधा वडी नींतरी. खम-
णी न आवे छै तामजी । तिणसूं पूंजै छै जांय-
गां जोयनें, ते समाई तणुं नहीं कांमजी ॥
॥ शि ॥ ४२ ॥ मांखी माछर कीडी आदि दे । ते
तो लागे छै शरीरे आयजी । ते खमणी न आवै
तरणीं । तिणसूं पूंज परहा करै तहायजी ॥
॥ शि ॥ ४३ ॥ जो कायास्थिर राखे येक आश-
णे । तिणरे पूंजणीरो कांई कामजी ॥ परिशह खम-
णी नहीं आवे तेहनें । पूंजणी राखीछै तामजी
॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनी कह्यां समभ पडै नहीं ।
तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा बाहर
धर्म श्रद्धनें । नहीं करणी एहवी अनीतजी ॥
॥ शि ॥ ४५ ॥ [illegible] [illegible] जावता । कियां
[illegible] ॥ जे शरीरसूं निरवद्य कर्तव्य

लांरा किया पच्च खाणजी ॥ खेत्र थी सर्व क्षेत्र
मझै । काल थी मऊरत एक जाणजी ॥ शि
॥ ३३ ॥ भाव थकी राग द्वेष रहित छै । जब
संबर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीतै समाई
ओलखी करै । जव सामाइक हुवे तायजी ॥
शि ॥ ३४ ॥ अवशर सघला नें त्याग दिया ।
त्यांसू करै संभोगजी ॥ तिणसूं भांगै समाई व्र-
त तेहनूं । इणरा वर्त्यां छै सावद्य जोगजी ॥
शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई में सामाई तणूं । का-
रज करणू राख्यो छै आगार जी ॥ तिणरो कार्य
क्रियां समाई भागै नहीं । तिणरो पिण करै विचा-
रजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई में मांहो मांहि कार-
ज करै । तेतो सूत्रमें नहीं छै तायजी ॥ ते निश्चय
थापणी आवे नहीं । ज्ञानी वदे ते सत्य वायजी
॥ शि ॥ ३७ ॥ केई कहें समाई में राखी पूंजणी
। राखीते दयारे कामजी ॥ तिणरो जवाब सूण
विवरा सुद्ध । चित राखी एकंत ठामजी ॥ शि
॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजै समाई मझे । मात्रादि
परठै पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नहीं ।
तिणमें धर्म कहे ते अबूझजी ॥ शि ॥ ३९॥

शरीर पूंजै परठै मांत्रो। ए शरीरादिकरा छैकाजजी ॥
जो धर्म तणु कारज हुवे। तो आज्ञा देवै जिन
राजजी ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणु परटणु करै न-
ही। कायस्थिर राखे येक ठामजी ॥ हस्तादिक
बिना हलावियां। रहणी नहीं आवैछै तामजी ॥
॥ शि ॥ ४१ ॥ वले अबाधा बडी नीतरी. खम-
णी न आवे छै तामजी। तिणसूं पूंजे छै जांय-
गां जोयनें, ते समाई तणूं नहीं कांमजी ॥
॥ शि ॥ ४२ ॥ मांखी माछर कीडी आदि दे। ते
तो लागै छै शरीरै आयजी। ते खमणी न आवै
तेहथी। तिणसूं पूंज परहा करै तहायजी ॥
॥ शि ॥ ४३ ॥ जो कायास्थिर राखे येक आश-
णे। तिणरे पूंजणीरो कांईकामजी ॥ परिशह खम-
णी नही आवै तेहसें। पूंजणी राखीछै तामजी
॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनीकह्यां समझ पडैनही।
तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा बाहर
धर्म श्रद्धनें। नही करणी एहवी अनीतजी ॥
॥ शि ॥ ४५ ॥ शरीर उपग्रणारा जावता। कियां
सावद्य जोग व्यापारजी ॥जे शरीरसूं निरवध कर्तव्य

करै तिणनें जिन आज्ञा दे श्रीकारजी ॥ शि ॥ ॥ ४६ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सामाइक में जो उपग्रण रखा है सो प्रथम करण परिभोगने को रखा है वो दूसरे को कैसे भोगावैं दूसरे को भोगानेका तो त्याग है इस लिए सामायिक पचखते समय कहता है द्रव्य थकी तो जो कर्नें रखा सो द्रव्य उपरान्त त्याग, क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्रों में एह त्याग है अर्थात् किसी जगे भी आगार नहीं, काल थकी एक महूरत लग, भावथी राग द्वेष रहित है तब संवर निरजरा मयी गुण निपजता है, इस तरहैं सामायिक को पहचान के सामायिक करणे से सामायिक होतीहै, त्यागे हूएसें संभोग करने सें सामायिक व्रत भंग होता है इसवास्ते जो कार्य आगार नहीं रखा है उन्हें नहीं करना चाहिए, कितनेक सामाईक में सामाईक वालेका कार्य करना आगार रखके कार्य करते हैं तो उनकी सामायिक नहीं भागती है परंतु उसकाभी प्रमाण करना अवश्य है, सामायिक में दूसरे सामायिक वाले का कार्य करना आगार रखे सो सूत्रों में नहीं कहाहै इससें इस बोलकी स्थाप नहीं की जाती इससें निश्चय ज्ञानी कहै सो सत्यहै, कोई कहै दया पालने के निमित समाई में पूंजनीरखते हैं सो पूंजनी रखने में धर्म है ऐसी कहै जिसका जवाब यहहै कि पूंजनी रखते हैं सो प्रमत में है अपना शरीर स्थिर नहीं रहसक्ता चंचलता के कारण हाथ पग हलाता है तथा एक जगेसे दूसरी जगें अंधेरे में जाता आता है वा मख्खी मच्छर

आदि शरीर पै बैठतेहैं तो उनको जयणासें पूंजनी कीडी कुंथु-आदि जीवों की अनुकम्पा लाके उन्हैं नहीं मारनां एह जो दया भाव है सो निरवध है किन्तु पूंजणी रखी सो निरवधजोग नहीं है अव्रताश्रव है सावध योग जिन आज्ञा बाहरहै, मक्खी मच्छर आदि शरीर के चटकें देवैं वो परिशह खमना परंतु खमें नहीं जाते तब पूंनणी से उन्हे दूर करता है यहतो प्रत्यक्ष अपनी कचाई है जो अपनी काया येक आशन स्थिर रखें तो पूंजणी की क्या जरूरत है इस लिए पूंजणी रखता है सो शरीर के काम आतीहै लेकिन सामायिक के काम नहीं आती इस लिए सावध जोग हैं स्वामी श्रीभीखनजी कहते हैं कि इतनी करें भी समझ नहीं पडे तो श्रीजिनेश्वरों की प्रतीत रखना चाहिए समझना चाहिए कि जिस कार्यकी जिन आज्ञा है सो कार्य करते कराते अनु मोदते धर्म है और जिसकार्य की जिन आज्ञा नहीं है उसें करते कराते अनु मोदते धर्म नहीं है ॥ इति ॥

॥ अथ दशमूं देशावगासी व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

दशमूं देशावगासी व्रत छै । तिणरा भेद अ-
नेक ॥ थोडासा प्रगट करूं । ते सुणजो आण
विवेक ॥ १ ॥

॥ ढाल मम करो काया माया कारमी ॥
॥ एदेशी ॥

देशावगासी व्रतनां । भांगा हुवै विविध दोयजी ॥ पहलो छै छट्टा नींपरै । दूजो सातमां ज्यूं होयजी ॥ सिखाजी व्रत आराधिये ॥ १ ॥ दिन प्रते प्रभात थी । छहुं दिशिरो कियो प्रमाण जी ॥ मर्यादा कीधी तिण बारली । पांचूं ही आश्रवनां पचखाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जे भूमिका राखी छै मोकली । तिण मांहि द्रव्यादिक्नों व्यापारजी ॥ मर्यादा सक्ति सारू करै । भोगादिक करै परिहारजी ॥ सि ॥ ३ ॥ कालथी दिवशनें रातनूं । भावथी विवध प्रकारजी ॥ करण जोग घालै तेतला । जेतला करै परिहारजी ॥ सि ॥ ४ ॥ वलि जघन्य नवकारसी आदिदे । उत्कृष्टो घालै काल कोयजी ॥ मर्यादा सूं त्यागै सावज्झ भणीं । जिम करै तिम होयजी ॥ सि ॥ ५ ॥ कोई करै छै त्याग हिन्सा तणु । तिण में कालरो करै प्रमाणजी ॥ ते त्याग पूरा हुवां तेहनें । आगै तो नहिं पचखाणजी ॥ सि ॥ ६ ॥

हिन्सा झूंठ चोरी मैथुन नूं। वलि पांचमूं परिग्रह जांणजी॥ एह पांचूं हीं आश्रव द्वारनुं। काल घालिनें करै पचखाणजी॥ सि॥ ७॥ प्रमाण करै छव्वीस बोलनूं। पंदरा कर्मादान तणूं प्रमाणजी॥ वलि सचितादि चवदह नियमनूं। यांरा नित्य नित्य करै पचखाणजी॥सि॥ ॥ ८॥ नवकारसी पोहरसी पुरमुढ। येकाशणों आंबलादिक तासजी॥ उपवास बेलादिक तप करै। उत्कृष्टो करै छमासजी॥ सि॥ ९॥ तपतणूं कष्ट हूवै तिको। ते करणी निरजरा तणीं जांणजी॥ खावा पीवारो व्रत हुयो तिका। ते दशमूं व्रत हुअै आंणजी॥ सि॥ १०॥ जे जे सावद्य त्यागै तेहमें। कालरो करै प्रमाणजी॥ तेह दशमूं व्रत नीपजै। इणमें जावज्जीवरा नहीं पचखाणजी॥ सि॥ ११॥

॥ भावार्थ॥

अब दशमां देशावकासी व्रत कहते हैं—अर्थात् कालका प्रमाण करिके त्याग करै वो दशमां व्रतहै यह दो भांगोसें होता

है प्रथमां भांगे तो छट्ठाव्रत सम, और द्वितिया भांगे सातमांव्रत सम है, जिसका भेद विवध प्रकार सें जानना जिसमें इहां सत्ते-पमात्रसें वर्णन करते हैं द्रव्यतः दिवश प्रतें प्रभात सें छहुंदि-शोंका प्रमाण करके मर्यादा उपरान्त पांच आश्रवद्वार सेने से-वानेका पचखाण करना, जितनी भूमी रक्खी उसमें भी यथा शक्ति द्रव्यादिक की मर्यादा उपरान्त विषय भोगादि का त्याग, कालथकी दिवश रात्रि प्रमाण, रागद्वेष रहित उपयोग सहित अनेक प्रकार अर्थात् इच्छा प्रमाण करण योग सें, और गुन-थकी संवर निरजरा; पुनः जघन्य नवकारसी अर्थात् येक महूर-त तक और उत्कृष्ट जितना काल तक करै उतनाही कालतक सावद्य जोगोंके त्याग और हिन्सादि पंच आश्रवद्वारके त्याग जैसे जैसें करै उसही तरहें सें दशमाव्रत होता है यह प्रथम भांगा कह था; दूसरें उलाणिया विहं आदि छवीस बोल, इंगालिक कर्म आदि पंदरह कर्म्मादान, और सचितादि चवदह नियम का मर्यादा उपरान्त जितने कालतक के त्याग करैं सो दशमांव्रतहै, नवकारसी पहोरसी पुरमुढ अर्थात् डेड पोहरसी, येकाशणां उपवास वेला तेला आदि छमासी तप श्रावक करैं सो दशमा व्रतहै, तप करतें कष्ट सहन करैं जिससें निरजरा होती है और सावद्य जोगोंके त्यागनें सें श्रावकके संवर होता है सो दशमां व्रत संवर है, तात्पर्य इसमें जावज्जीवके पचखाण नहीं हैं, कालकी मर्याद रखके जो जो त्याग किये सो व्रत हैं आगार रक्खा उसें सेता सेवाता और अनुमोदता है सो अव्रत है जिससें पाप कर्मोपार्जन होता है ।

॥ अथः इग्यारमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

श्रावकरो व्रत ग्यारमूं । पोषध कह्यो भगवान ॥ सिखा व्रत रलियामणों । हिवै सुणूं सुरत दे कान ॥ १ ॥

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

हिवै पोषध व्रत रलियामणूं । पचखै चिहुं विधि आहारजी ॥ अवम्भ मणी सुवण तजै । माला वणग विलेवण परि हारजी ॥ सिखाजी व्रत आराधि ए ॥१॥ सस्थ मूशलादिक आदि दे । सावज्झ जोग तणां पचख्खाणजी ॥ कालथी दिवशनें रातनूं । एक पोसा तणूं प्रमाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जघन्य दोय करण तीन जोगसूं । करै सावज्झ जोग पचखाणजी ॥ कोई उत्कृष्ट भांगे करै । तीन करण तीन जोगरां जांणजी ॥ सि ॥ ३ ॥ द्रव्यथी कनें तिण उपरांतरा । किया सर्व द्रवांरा पचखाणजी ॥ खेत्रथी सर्व क्षेत्रां मझै । कालथी दिवशनें रात्रिरा जांणजी ॥ सि ॥ ४ ॥ भावथी रागद्वेष रहित करै । बलि चोखै चित उप-

योग सहितजी ॥ जब कर्म रुकै छै आवता ।
वलि निरजरा हुवै रूडी रीतजी ॥ सि ॥ ५ ॥
उपग्रण पोसामें राखीया । तिण उपरांत किया
पचखाणजी ॥ राख्या ते अव्रत परिभोगरी । तिणरो
पाप निरंतर लागै छै आंणजी ॥ सि ॥ ६ ॥
पोसानें सामाइक व्रतनां । सरिषा छै पचखाणजी ॥
सामाइक तो महूरत येकनीं । पोषो दिवश रातरो
जांणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ पोषानें सामाइक व्रतमें ।
यां दोयां में सरिषो छै आगारजी ॥ ते कह्या छै
सघलाही अव्रत महीं । ते जोयकरो निस्तारजी ॥
सि ॥ ८ ॥ जब कोई कहै पोषध व्रतमें । मणी
सुव्रणादि पचखाणजी ॥ तिणसूं मणी सुव्रणा-
दि कनें राखीयां । पोषो भाग गयो जांणजी ॥
सि ॥ ६ ॥ पोसा मांहि कनें राखीया । मणी
सुव्रणादिक जांणजी ॥ तिण उपरांत राखणरा
पचखाण छै । तसुं उत्तर यह पिछाणजी ॥ सि ॥
॥ १० ॥ उमुक काहितां मूंकी दिया । त्यां मणीं
सुव्रणरा पचखाणजी ॥ कनें रह्या त्यांरी अव्रत
रही । भगवती सूं करिजो पिछाणजी ॥सि॥११॥
जो मणी सुव्रणरा जावक पचखाण हूवै । तो उ-

सुकरो पाठ कहता नांहिजी ॥ श्रोतो निर्णय उ-
घाडो दीसी गयो । विचार देखो मन मांहिजी ॥
सि ॥ १२ ॥ श्रेणिकनें कृष्णजी री राणियां ।
इत्यादिक राणियां अनेकजी ॥ त्यां पोषा किया
दिसे गहणां थकां । समजो श्राणि विवेकजी ॥
सि ॥ १३ ॥ त्यां री चूड्यां में हीरा पन्ना जड्या ।
वले दांतां में जाणिजे मेखजी ॥ और गहणां
त्यां रे पहरयौं । त्यां उतारया न दीसें छै येकजी ॥
सि ॥ १४ ॥ भारी २ जुहार चूड्यां जड्या । वलि
भारी २ गहणां हात गला मांहिजी ॥ तें सघ-
लाही केम उतारसी । थोतो मिलतो न दीसै छै
न्यायजी ॥ सि ॥ १५ ॥ त्यां कीधी समाई संदया
कालरी । समाइ कीधी रात प्रभातजी ॥ ते खिं-
ण २में केम उतारसी । या पिण मिलती न दीसै
बातजी ॥ सि ॥ १६ ॥ सामाइ मैं गहणां नाहिं
राखणां । तो चूड्यां नहीं राखणी त्हायजी ॥ गह-
णांनें चूड्यां तो येकहीजछै । दोनूं हीं आभूषण
म्हांयजी ॥ सि ॥ १७ ॥ सामाइ नें पोसा तणीं ।
दोयां री विधि जाणजो येकजी ॥ रीत दोयां री
बरोबरी । समझो श्राणि विवेकजी ॥ सि ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब इग्नारमा पोषध अर्थात् धर्म पुष्टी रूप व्रत कहते हैं जिसमें इस माफिक त्याग होते हैं।

१ असण (आहार) पांण (पांणी) खादिम (मेवादिक) स्वादिम (पान सुपारी लवंगादि) के त्याग।

२ अबम्भ अर्थात् अब्रह्मचर्य ते मैथुन के त्याग।

३ उमक मणि सुवरण अर्थात् रतनादिक वा सुवर्णादिक बोसाराये हुए के त्याग।

४ माला अर्थात् पुस्पमाला फूल आदि के त्याग।

५ वरण अर्थात् गुलाल अबीर रङ्ग आदि के त्याग।

६ विलेपन अर्थात् केशर चन्दन आदि का विलेपन करने का त्याग।

७ सस्थ मूशलादि सावज्ज जोग अर्थात् शस्त्र मूशल आदि सावद्य जोग बर्ताने का त्याग।

उपरोक्त सात प्रकारके त्याग किये जाते हैं सो खेत्र थी सर्व खेत्रों में, कालथी अहोरात्री प्रमाण, दोय करण तीन जोगों से वा तीन करण तीन जोगों से, भावथी राग द्वेष रहित गुणथी संवर निरजरा, इसप्रकार अपने पास में ज्यो वस्त्र वा गहणा आदि द्रव्य पोसा पचखते वक्त रक्खा है उन द्रव्यों उपरांत सावद्य जोग सेना सेवाना का त्याग होता है, जो उपग्रण कने रक्खे वा अव्रत में है जिससे परिभोग की अव्रत पोसा में निरंतर लगती है, पोसा और सामाईक के आगार येकसा है आगार उपरांत त्याग किये सो सामाईक का नवमा व्रत येक

महूरत का है और पोसा इग्यारमां ब्रत रात्रि दिन का है, जब कोई ऐसा कहै कि पोसा अङ्गीकार करता है तब सुवरणादि तथा मणीरतनादि का पचखाण करता है इसलिये पोसा में गहना नहीं रखना चाहिये जिसका जवाब यह है कि पोषध ब्रत में उमक मणी सुवरण के साग है अर्थात् मूके हुये मणी सुवरण रखणे के साग है अपने पास में गहना पहरा हुआ है वो तो आगार है इसवास्ते साग भंग नहीं होता, आगले जमाने में भी कृष्ण जी और श्रेणिक राजा की राणियों ने पोषह किये हैं उनकी चूडियों में तथा आभूषणों में अनेक बहु मूल्य रतन जडे हुये थे परंतु चूडियां उतारकर पोषध किया ऐसा अधिकार कहीं भी सूत्रों में आया नहीं तथा सामाईक ब्रतकरते वक्त भी पहने हुये आभूषणों का आगार है सो अब्रत आश्रव द्वार है परंतु सागों का भङ्ग नहीं होता यदि आभूषण रखणे से सामाईक और पोषध ब्रतका भङ्ग होय तो फिर किञ्चित मात्र भी सुवरण अथवा रतन जडित आभूषण नहीं रखना चाहिए स्त्री जाति के सामाईक और पोषध में चूडियां तो अवश्य ही रहती है, किसी स्त्रीनें संध्या समय वा अर्द्ध रात्री समय सामाईक करी तो वेर वेर में चूडियां कैसें खोलगी चूडियां खोल के सामाईक करै ये न्याय तो मिलता नहीं इसलिये स्पष्ट ही मालूम होगया कि मणी सुवरणादिका सर्वथा प्रकार साग नहीं है और जो सामाईक की विधी है वोही पोषध की विधी है।

॥ ढाल तेहिज ॥

यह लोकारै अर्थ करै नहीं। न करै खावा पांवारै हेतजी ॥ लोभ लालच हेतु करै नहीं।

परलोक हेत न करै तथजी ॥ सि ॥ १९ ॥ संवर निरजरा हेतै करै। और वंछा नहिं कांयजी ॥ इण परिणामां पोसो करै। ते भावथकी शुद्ध था-यजी ॥ सि ॥ २० ॥ कोई लाडूआं साटै पोसो करै। कोई परिग्रहो लेवा करै तामजी ॥ कोई और द्रव्य लेवा पोसो करै। ते कहवा नें पोसो छै नामजी ॥ सि ॥ २१ ॥ ते तो अरथी छै एका-न्त पेटरा। ते मजूरी या तणी छै पांतजी ॥ त्यांरा जीवरो कारज सरै नहीं। उलटी घाली गला मांहि रांतजी ॥ सि ॥ २२ ॥ लाडूआं साटै पोसा करावसी। अथवा धन देई तामजी ॥ ते कहि-वानें पोसो करावियो। पिण संवर निरजरा नूं नहीं कामजी ॥ सि ॥ २३ ॥ कर्म काटण करै मजूरीया। त्यांरा घट मांहि घोर अज्ञानजी ॥ लाडूखवायपोसा करावणां। ये तो कठैही न कह्यो भगवानजी ॥ सि ॥ २४ ॥ करम काटण करै मजूरीया। त्यांरा घट मांहि घोर अंधारजी ॥ पईसा देईनें पोसा करावणां। ते नहिं चाल्या सूत्र मंझारजी ॥ सि ॥ २५ ॥ मजूरीया करै खेती निदाणवा। मजूरीया करै घर करावा कांमजी ॥

कड़ब काटण करै मजूरीया । कर्म काटण नहिं चाल्या तामजी ।। सि ।। २६ ।। खेत खडवा नें चाल्या मजूरीया । वलि भार लेजावण कामजी ।। धान खांडण करै मजूरिया । कर्म काटण नें नहिं चाल्या तामजी ।। सि ।। २७ ।। विरक्त होय काम भोगथी । त्यांनें त्यारया छै शुद्ध प्रणामजी ।। मुक्तिरै हेतु पोसो करै । ते असल पोसो कह्यो स्वामजी ।। सि ।। २८ ।। इण विधि पोसो कियां थकां । सीझसी आतम कार्यजी ।। कर्म रुकसी नें वलि टूटसी । इम भाषियो श्री जिनरायजी ।। सि ।। २९ ।। इति ।।

॥ भावार्थ ॥

पोषध यह लोक के लिये परलोक के लिये अर्थात् परलोक में सुखों की वांछा निमित्त और खाने पीने के लिये तथा किसी प्रकार का लोभ लालच के निमित्त नहीं करना चाहिये, येकान्त संवर निरजरा के निमित्त पोषध व्रत करने से भाव पोसा होता है. यदि किसीनें लाडू खानें के या परिग्रह लेन के निमित्त या कोई वस्तु लेन के निमित्त पोषध किया तो वो सिर्फ नाम मात्र पोसा है, लाडू खाने के निमित्त पोसा किया सो तो पेटार्थी है उन्हें मजदूरों की पंक्ति में जानना उनका कार्य सिद्ध नहीं होता है उन्हों के तो अशुभ कर्म का बंध होता

है, इसही तरहें किसीनें लाडू खवाके या धन देके पोसा कराया तो वो नाम मात्र पोसा कराया जानना ऐसे पोसा करानेसें संवर निरजरा कदापि नहीं होता है और दूसरों का माल लाडू आदि मिष्टान खाके जो मजदूर पोसा करते हैं उनके हृदय में घोर अज्ञान है क्यों के उन्हों नें तो सिर्फ खाने के निमित्त पोसा किया है वो लोग यह नहीं जानते कि पोसा क्या है और कैसें होता है, कर्म काटणे के निमित्त मजदूरों सें पोसा कराना और करना ऐसा कहीं भी भगवान नें नहीं कहा है पैसा देके मजदूरों से पोसा कराना और पैसा लेके पोसा करना ऐसा अधिकार किसी भी सूत्र में नहीं है परन्तु भोले लोक कुगुरुवोंके उपदेश सें जिमां के या पैसा देके पोसा कराते हैं वो अपनी मान वडाई और जसो कीर्त्ति के कामी है, खिलाने सें और धन देने सें धर्म कदापि नहीं होता है यदि ऐसें पोसा हो तो चौथे आरे में तो धनाढय श्रावक बहोत थे किन्तु किसी नें भी इस तरहें मजदूरों सें पोसा कराया नहीं, और जो श्रावक है वो तो इस तरहें पोसा करता कराता नहीं, कर्म काटणें के मजदूर तो कहीं सुने नहीं, अलबत्तां खेती करनें को निनाण करणे को बोझ भार उठाणे को कडब काटणे आदि कार्य करणे को तो मजदूर हैं परंतु कर्म काटणे के मजदूर तो नहीं होते यतो प्रत्यक्ष दिखलाई है, इस तरहें पोसा नहीं होता है, होता है सिर्फ वैराग्य भाव लाके काम भोगों सें विरक्त होनें सें और यथार्थ श्रद्धावंत होने सें तब ही आतम कार्य की सिद्धि होती है, श्रावक के पोसा करने सें आवते कर्म रुकते हैं और अशुभ कर्म क्षय होके जीव निरमल होता है उसही का नाम पोसा है बाकी लोभ लालच के निमित्त पोसा करने करानें सें

धर्म कदापि नहीं होता है, तात्पर्य पोषध लेते वक्त जो जो सावद्य जोगों के साग किया है वो इग्यारमां व्रत है सोही श्रावक धर्म है और जो जो आगार रक्खा है वो अव्रत आश्रव है अव्रत सेनें सेवाने और अनुमोदने में एकान्त पाप है ॥इति॥

॥ अथ द्वादशम् अतिथि संविभाग व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

अतिथि संविभाग चौथो शिखा । ते बारमूं व्रत रसाल ॥ श्रमण निर्ग्रंथ अणगार नें । दान देवै दग चाल ॥१॥ ते फासू अचितनें सूझतो । कल्पै ते द्रव्य अनेक ॥ कल्पै ते खेत्र कालमें दान दे आंणि विवेक ॥ २ ॥ जो उंदान दे मुक्ति नें कारणें । और वंछा नहिं कांय ॥ जब निपजे व्रत बारमूं । इम भाष्यो जिनराय ॥ ३ ॥ इग्यारा व्रत बस आपरै । मन मांनें जब निपजाय ॥ बारमूं व्रत शुद्ध साधुनें । प्रति लाभ्यां सें थाय ॥ ॥ ४ ॥ लाखां कोडां स्दराचिया । जीव अनन्ती बार ॥ पिण दान सुपात्र दोहिलो । ते जीव तणो आधार ॥ ५ ॥ ए व्रत निपावा कारणें । उद्यम करै नित नेम ॥ भावै साधां री भावना ।

हाथें दान देवा सूं प्रेम ॥ ६ ॥ आलस छोडणां किण विधै । किण विध देणां दान ॥ उद्यम करणों किण विधै । ते सुणों सूरत दे कांन ॥७॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा शिखाव्रत क्या है और कैसें होताहै सो कहतेहैं । इसका नाम अतिथि संविभाग है अर्थात् अतिथिको संविभाग देना परंतु वो अतिथि कैसे होना चाहिए कि जिन्होंको देनेंसें वारमा व्रत निष्पन्न हो सो कहते हैं, "समण निग्रंथ अणगार नें दान देवै दगचाल अर्थात् श्रमण तप संयम में श्रम करैं, ग्रंथ कहिए परिग्रह ते धन धान्यादि नहिं रखने वाले, और अणगार कहिए घर रहित, ऐसे साधू महात्माओंको प्राशुक अचित निरदोष आहार पांनी कामभोगों की अभिलाषा रहित एकान्त मुक्तकी आसासें देने सें श्रावक के वारमांव्रत निपजताहै ! इग्यारात्रत निपजानां तो अपनी हातकी बात है जी चाहे जब निपजा सक्ता है परंतु वारमाव्रत तो शुद्ध साधू मुनिराजका संयोग मिलनें सें और आहार पानी आदिकी शुद्ध जोगवाई होने सें होता है, लाखों क्रोडों का खरच और संसारिक दानतो यह जीव अनन्ती वार कियाहै परंतु सुपात्र दान देना महा दुर्लभ है सुपात्र दान सेंही वारमाव्रत होताहै इसलीये श्रावकको इस व्रत निपजानें का उद्यम करना अत्यावश्यक है हमेशांमुनिराजों की भावना दिलमैं रखना और शुद्ध योगवाई मिलनेंसें स्वहस्त द्वारा दान देना श्रावकोंका कर्त्तव्य है; आलश्य तजके किस प्रकार दान देणां और इसका उद्यम कैसें करना सो कहते हैं ।

॥ ढाल जीव मोह अनुकम्पान आंणिये ॥

॥ एदेशी ॥

बारमूं व्रत छै श्रावक तणूं । तिणरो सांभल जो विस्तारजी ॥ समण निग्रन्थ अणगारनें । देवो चिहूं विध शुद्ध आहारजी ॥ इम व्रत निप जावै बारमूं ॥ १ ॥ बले बस्त्र पात्र नें काम्बलो । पाय पूछणूं देवै एमजी ॥ पीढ फलग सेभ्या नें सांथारो । देवै औषध भेषध जेमजी ॥ इम ॥२ ॥ इत्यादिक वस्तु कल्पै तिका । साधां नें दीधां हर्षित होयजी ॥ जाणैं धन दीहाडो धन घडी । बारमूं व्रत नीपनूं मोयजी ॥ इम ॥ ३ ॥ करै चिन्तवनां साधां तणीं । घरमैं देखै शुद्ध आहारजी ॥ बलि भांणै बैठ भावै भावनां । व्रत धारीरो यो आचारजी ॥ इम ॥ ४ ॥ साधू आय ऊभा देखैं आंगणैं । विकसै सबली रोमरायजी ॥ अशणां दिक देवै भावसूं । घणुं मन रलियायत थाय जी ॥ इम ॥ ५ ॥ काचा पांणी सूं थाली धोवै नहीं । बले शाचेत न राखै पासजी ॥ संघटै नहिं वैसै साचितरै । व्रत निपजावणरो हु-

ल्लासजी ॥ इम ॥ ६ ॥ कांई कांम पड़े आय स-
चित्तरो । जब खिण समता राखै विख्यातजी ॥
दिश अवलोक्यां बिण साधुरी । नहिं घालै सचि-
त में हात जी ॥ इम ॥ ७ ॥ कल्पै ते वस्तु पड़ी
असूझती । कदे सहजै सूझती होय जी ॥ तो
खप करि राखै सूझती । सचित ऊपर न मेलै को
यजी ॥ इम ॥ ८ ॥ जे जे द्रव्य जांणै छै सूझ-
ता । कल्पै ते साधूनें जांणजी ॥ तिणरी भावै नि-
रंतर भावनां । यहवा श्रावक चतुर सुजाणजी ॥
इम ॥ ९ ॥ चित्त वित्त पात्र तीनूं तणुं । कदे
आय मिलै संजोगजी ॥ जब अडलक दान दे
हात सूं । पछे न करै पिछतावो सोगजी ॥ इम
॥ १० ॥ जे जे व्रत धारी श्रावक हुवै । ते जीम
तां न जड़ै किमाड जी ॥ उववाई नें सुयगडा अं-
ग में । त्यांरा चाल्या उघाडा द्वारजी ॥ इम ॥ ११ ॥
सहिझैं उघाडा हुवै बारणां । जब राखै उघाडा
तांमजी ॥ नहिं जड़ै उघाड़ा बारणां । साधां नें
दांन देवा कांमजी ॥ इम ॥ १२ ॥ और भेष उ-
घाड मांहि धसै । साधू न आवै खोल किंवार जी ।
तिण सूं व्रत धारी श्रावक हुवै । ते तो राखै उघा-

हा द्वारजी ॥ इम ॥ १३ ॥ सहजें आया छै घर आंपणों । नीपनूं देखि शुद्ध आहार जी ॥ जब काल जाणौं गौचरी तणूं । तो वो बाट जोवै तिण वारजी ॥ इम ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

बारवांव्रत श्रावक का है वो कसें निपजता है सो कहते हैं:—श्रमण निग्रंथ अणगार को असण १ पांण २ खादिम ३ स्वादिम ४ वस्त्र ५ पात्र ६ काम्बला ७ पद पूंछणां ८ पीढ ९ फलग १० सेज्या ११ संथारो १२ औषध १३ भेषज १४ इत्यादिक कल्पतीवस्तु अर्थात् जो साधू को लेने जोग दोषरहित हो सो देने सें बारमां व्रत निपजता है, उपरोक्त प्राशुक वस्तुओं को देके श्रावक अत्यंत हर्षाय मान होय, विचारै कि आजका दिन और घडी धन्य है ऐसे सत्पुरुषों की योगवाई मिलनें सें मेरे बारमां व्रत हुआ, तथा जब अपने घरमें सूझता असनादि देखै तब अथवा जीमते वक्त साधू मुनिराज की भावनां भावै आहार पानी आदि जो जो वस्तु साधुओं को कल्पती है उन्हें सूझती देखैं तब विचार करै कि इस वक्त यदि मुनिराजों का योग मिलै तो स्वहस्त सें दानदूं तब मनका मनोरथ फलै, जीमनें को बैठै तो येक दम मुख में नघालै साधुओं की राह देखैं, जीमते समय सचित पानी सें थाली न धोवें सचितका संघट्टा नरखैं बादा इसही वक्त साधू पधार जाय तो हर्ष सहित व्रत निपजावै, साधुवों को वस्तु कल्पै सो असूझती पडी होय तो सो साधुवों के लिये सूझती न करैं यदि स्वतः ही सूझती हो

तब उसें सूझती रखैं और उन वस्तुवों को साधू को बहराने की भावना निरंतर रखैं योग मिलन सें अढलक दान अर्थात जितनी चावना साधू को हो वो हर्ष सहित भरपूर देवैं, और व्रतधारी श्रावक हो वो जीमते समय द्वारके कपाट न जडें उव-बाई सूत्र में श्रावकों के उघाड़े द्वार कहे हैं क्योंकि द्वार बंध होयतो द्वार खोलके साधू अन्दर नहीं आते हैं दूसरे भेष वाले तो द्वार खोल के अन्दर भी आहार लेने को आजाते हैं परंतु साधू मुनीराज तो कपाट खोलते जडते नहीं इसलिए श्रावकों के उघाड़ द्वार कहे हैं. यदि जडेहुये किवाड होतो उन्हें साधु-वों के निमित्त न खोलैं अपने कार्य के निमित्त खुलें तव उन्हे न जुडें और साधू मुनिराजों की भावना रक्खैं ये व्रतधारी का आचार है।

॥ ढाल तेहिज ॥

ज्यां रे हूंसघणी छै मांहिली । पोतै स्वहात देवा दानजी ॥ त्यांरा हृदय में साधू वसरह्या । ते किण विध मूंकै ध्यानजी ॥ इम ॥ १५ ॥ अशणांदिक थाली में लीधांपछै । तुरत घाले नहिं मुख म्हांयजी ॥ दिशि अवलोकै भावै भा-वना । जाणों साधु पधारै आयजी ॥ इम ॥१६॥ इण विधि भावना भावतां थकां । मिलै सतगुरू नीं जोग वाईजी, तोउ दान दे उलट परिणांमसुं । चूकै नहिं अवशर पाईजी ॥ इम ॥ १७ ॥ सक्ति

सारुदान दे साधुनें । पिण न करे कूडी मनवारजी। ठाली बादल ज्यूं गाजे नहीं । सांचे मन बोलै शुद्ध विचारजी ॥ इम ॥ १८ ॥ अढलक दान देई साधुनें । पोमावे नहिं औरां पासजी ॥ गिरवो गम्भीर रहै सदा । त्यां नें वीर बखाण्यां तासजी ॥ इम ॥ १६ ॥ अढलक दान देणु पातरै । नहिं जिण तिणनें आसानजी ॥ दान देवारो ध्यान रहे सदा । एहवा विरलाछे बुद्धिवानजी ॥इम॥२०॥ आछी वस्तु गोप राखे नहीं । न आणे लोलपणां नें लोभजी ॥ गमती वस्तु देवे साधु नें । पिण कूडी न साधे सोभजी ॥ इम ॥ २१ ॥ आप खावें ते अव्रतमें गिणें । तिणसूं बंधता जाणें पापकर्म जी ॥ दान सुपात्रनें दीयां । जाणें संवर निरजरा धर्मजी ॥इम॥२२॥ सुपात्र दान देवे तिण अवशरे। लेखो नकरै मन म्हांयजी ॥ लेखो कियांसूं तो लोभ उपजे । अढलक दान दियो नहिं जायजी ॥ इम ॥ २३ ॥ लाडू धोवणां दिक बहिरायतां । राखे येक धारा परिणामजी ॥ व्रतधारी आघो कोर नहिं । रूडी जोगवाईपांमजी ॥ इम ॥२४॥ सदावरियां बिन पाछा फिरै । कांई आय पड्यां

अंतरायजी ॥ जब पछतावो कियां पुन्य बंधे। वलि कर्म निर्जरा थायजी ॥ इम ॥ २५ ॥ पिछतावो कियांही पुन्य बंधे। तो वहिरायां हुवे लाभ अनन्तजी ॥ उत्कृष्टो तीर्थंकर पदलहै। इम भाष गया भगवंतजी ॥ इम ॥ २६ ॥ सूझती वस्तु न करै असूझती। तेतो दान देवारै कामजी ॥ असूझती नकरै सूझती ॥ वहिरावणारा आंणि परिणामजी ॥ इम ॥ २७ ॥ जांणिनें न देवे असूझतो। करडो पिण बणियां कांमजी ॥ निरदोष दीधी वस्तु हातसूं। पाछी लेवारी नहिं हामजी ॥इम॥ ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

जिन्होंके मुनिराजको स्वहस्तद्वार दान देनेकी हूंस अर्थात् हर्षाभिलाषाहै उन्होंके हृदयमें हमेशा साधू बस रहे हैं वोह ध्यान उनके चित्तसें कैसे दूर होसकता है उनके तो खाते पीते वक्त यही ध्यान रहताहै कि इस वक्त साधू पधार जाय तो दान देऊं इसलिए श्रावक जीमते वक्त भाणें बैठै तब जल्दी करके साधूकी भावना भायें बिना मुखमें आहार न घालैं राह देखे यदि साधू पधार जांयतो दान देके अत्यंत खुस हो के विचारें कि आजका दिन धन्यहै सो मेरे बारमां व्रत निष्पन्न हुआ, दान देके दूसरों के पास अपनी तारीफ न करैं कि मैं बड़ा दानेश्वरीहूं तथा साधूवोंके पास अपनी सेखी बी न करे

जैसे देनेका भावतो नहीं और कहे कि महाराज मेरे पास आप की कल्पती वस्तुवों बोहत है जो चाहे सो लीजीए कदा साधूको चाहिये तो लेना स्वीकार करे तब हात धूजने लगजाय ऐसी झूठी मनवार श्रावकको नहिं करनी चाहिय तथा अच्छी वस्तुको छिपाके खराब वस्तु भी साधूको नहिं धामना चाहिये अर्थात् अपना लोलपी पणां छोडके साधूवोंको इच्छित आहार पानी आदि बहिराना सो धारमां व्रतहै, सुपात्रको अडलक दान देना हरेकको आसान नहीं है दिलके ओछे आदमियोंसे या लोभी पूर्षों से सुपात्र दान नहिं दिया जाताहै इसलियें श्रावकों को चाहिये कि निरदोष आहार पानी आदि चौदह प्रकारका दान मनकी उत्साह सहित गहर गम्भीर दिल से देवें, उन्हों की ही भगवन्तोंनें सराहना की हे शास्त्रों में कहाहै शुद्ध दान देनेवाले महादुर्लभ हैं, श्रावक स्वयं भोजन करे सो अव्रत में जानें जिससें अशुभ कर्मो का बंध और शुद्धसाधू नि-ग्रंथको देवें उससे अशुभ कर्मों की निरजरा होके शुभ कर्म जो पुन्यहै सो बंधताहै और व्रत संवर धर्म होताहै, तब ही तो श्रावकके हमेसां यही अभिलाषा रहतीहै कि में मुनिराजों को प्रतिलाभूं वो दिन धन्यहै कदा वस्तु असूझती होजाय और साधू विना वहरियां ही चलेजाय तब बहोत पश्चाताप करै वि-चार करै कि देखो मे कैसा अभागी हूं, पश्चाताप करने से अ-शुभ कर्मोका नाश होके पुन्य बँधता है तो साधूवोंको बहराने से तो महाफल प्राप्त होता है उत्कृष्ट भांगे तीर्थंकर पद पाता है, इसलिये हमेशां भावना रखनी चाहिये लड्डू आदि मिष्टान तथा धोवण आदि पानी बहराते वक्त येकणा परिणाम रख-ना चाहिये सूझतीको असूझती और असूझती वस्तूको सूझ-

ती करिके कदापि नहीं देना तथा असूझती वस्तु तो साधूत्रों को हरगिज किसी भी हालत में नहीं देना क्योंके असूझता देने से तो यकान्त पापही होता है,

॥ ढाल तेहिज ॥

दान देवण देवावण कारणें । कदे अतीक्र में नहीं कालजी ॥ मच्छर मान बडाई छोडनें । दान देवै दूषण टालजी ॥ इम ॥ २६ ॥ आपणीं बस्तु कहै पारकी । दान देवा न देवा कांमजी ॥ धर्म ठिकाणें झूंट बोलै नहीं । मूंडै कोरी न राखै मांमजी ॥ इम ॥ ३० ॥ इग्यारै व्रतनो त्याग कियां हुवै । बारमूंव्रत दीधां होयजी ॥ तिणसूं कठिन कांम इण व्रतरो । विरला निपजावे कोयजी ॥ इम ॥ ३१ ॥ सुपात्र दान देवै तेहनें । निपजै तीन बोल अमोलजी ॥ संवर निरजरा हुवै पुन्य बंधे । त्यारों अर्थ सुणो दिल खोलजी ॥ ॥ इम ॥ ३२ ॥ जे जे वस्तु बहरायां साधू नें । तिण द्रव्यरी अव्रत न रही कांयजी ॥ ते व्रत संवर हुवै इण विधै । शुभ जोगां सें निरजरा थायजी ॥ इम ॥ ३३ ॥ शुभ योग वर्त्यां हुवै निरजरा । शुभ जोगां सें पुन्य बँध जातजी ॥

पुन्य सहजै हुश्रै निरजरा कियां । जिम खाखलो हुश्रै गेहुंरी साथजी ॥ इम ॥ ३४ ॥ उत्कृष्टै परिणामां दान दे । तो उत्कृष्टी टलै कर्म छोतजी ॥ उत्कृष्टा बंधै पुन्य तेहनें । बलि बंधै तीर्थंकर गौतजी ॥ इम ॥ ३५ ॥ जो उणारै पुन्य उदय हुवै इण भवे । दुःख दारिद्र दूर पुलायजी ॥ ऋद्धि सम्पदा पामें अति घणी । सुख साता में दिन जायजी ॥ इम ॥ ३६ ॥ जो उदय न आवै इण भवे । तो पर भवमें शंका मत जांणजी ॥ ऊंच गौत्रादिक सुख भोगवै । इण दान तणां फल जांणजी ॥ इम ॥ ३७ ॥ पुन्यरी वंछा करि देवै नहीं । समदृष्टी साधां नैं दानजी ॥ देव संवर निरजरा कारणें । पुन्यतो सहजे लागै आसानजी ॥ इम ॥ ३८ ॥ अव्रत में देतां थकां । पडै श्रावकरे मन धरकजी ॥ ज्यांनें दान दियां व्रत नींपजै । त्यांनें दीठांही पामैं हरखजी ॥इम॥ ॥ ३६ ॥ कांम पडै अव्रत में दानरो । जब दे तोही सरमां सर्मजी ॥ पछै करै पिछतावो तेहनूं । कांयिक ढीला पडै कर्मजी ॥ इम ॥ ४० ॥ अव्रत में दान दे तेहनुं । टालणारो करैं उपायजी ॥

जाणों कर्म बंधै छै म्हांयरे। मोनें भोगवतां दुःख दायजी ॥ इम ॥ ४१ ॥ अव्रत में दान देतां थकां। बंधे आठूंही पाप कर्मजी ॥ सुपात्र नें दान दियां थकां। म्हांरे संवर निरजरा धर्मजी ॥ ॥ इम ॥ ४२ ॥ अव्रतमें दान देवा तणूं। कोई त्याग करै मन शुद्धजी ॥ तिणरो पाप निरंतर टालियो। तिणरी वीर बखाणी बुद्धिजी ॥ इम ॥ ॥ ४३ ॥ कुपात्र दान मोह कर्म उदै। सुपात्र दान क्षयोपसम भावजी ॥ व्रत निपजै सुपात्र दा- नथी। तिणरो जांणो समदृष्टी न्यायजी ॥४४॥

॥ भावार्थ ॥

पुनः दान देनेकी विधि कहते हैं—मत्सर भावे दान बं- डाई छांडिके निरदोष दान दे अपनी बस्तुको पराये की बस्तु दान देने या न देने के निमित्त न कहै अर्थात् यह धर्म कार्य में झूठ न बोलैं, इग्यारे व्रततो त्याग करने से और बारमां व्रत शुद्ध साधू निर्ग्रंथको निरदोष दान देने से होता है इसलिये इस व्रतका निपजाना महा मुश्किल है कोई बिरले समझदार ही निपजा सकता है इस वास्ते इसके निपजाने की विधि स्वामी नें विस्तार पूर्वक कही है सुपात्रदान देने वालेको तीन बोल निपजते हैं प्रथमतो जो वस्तु साधूको बहराई उसकी अ- व्रत मिटगई सो सो व्रत हुआ तब कोई कहै सिर्फ साधूको देने से ही अव्रत क्यों मिटी और श्रावक आदि दूसरे जीवोंको

देने से अव्रत क्यों नहीं मिटी । इसका उत्तर यह है कि सा-धू के सर्वथा प्रकार अव्रत सेने सेवानें और अनुमोदने का त्याग है साधू कल्पती वस्तु भोगें सो उनके व्रत में हैं साधू आहार पानी आदि जिन आज्ञा प्रमाण करैं सो संयम यात्रा निरवाह-नार्थ करते हैं जिससे महाव्रतों की पुष्टी और मुक्ति का साध-न होता है निरदोष आहार पानी आदि की याचना करिके लेवैं सो तो तीसरा महाव्रत की आराधना है श्री प्रश्न व्याक-रण सूत्र में कहा है तथा राग द्वेष वरजके विधि पूर्वक भोगें सो अहिंसा आदि पांचूं ही महाव्रतों की पुष्टी और आराध-ना है इस लिये साधुओं को देने से तो श्रावक के बारमां व्रत संवर होता है और श्रावक आदि ग्रहस्तों को देने दिलाने और अनुमोदनें से अव्रताश्रव है ग्रहस्त आप भोगें सो भी अव्रत है भोगावें और अनुमोदैं सो भी अव्रत है उववाई सुयगडा अंग आदि सूत्रों में खुलासा कहा है, इस लिये सुपात्र दान देने में प्रथम तो संवर होता है, दूसरे साधू को वहरायें शुभ जोग वर्ते जिससें अशुभ कर्मों की निरजरा होती है, तीसरे शुभ जोग वर्तने से पुण्य बंध होता है, उत्कृष्ट भावों से दान देते उत्कृष्ट भावे तीर्थंकर गोत्र बंधता है । इस भव में पुन्योदय होने से दुःख दारिद्र दूर होता है । ऋद्धि सम्पदा सुख साता मिलती है, कदा इस भव में पुण्य उदय न होवे तो पर भव में तो अ-वश्य ऊंच गोत्रादि पुण्य प्रकृतियां उदय होवेहीगी उस पुन्यो-दय से प्रभु धर्म भली २ योगवाईयां मिलने से सर्व कर्मों का नाश करिके सिद्ध गति प्राप्ति होती है शुद्ध दान का ऐसा फल है, परंतु पुन्य की वान्छा करिके समदृष्टी दान न देवैं सिर्फ संवर निरजरा निमित्त दान दें जिससें पुन्य तो सहज सुभाव

लगते ही हैं जैसें गेहूं के साथ खाखला होता है वैसें हीं निरजरा होते वक्त शुभ योग वर्तने सें पुण्य होता है, इस लिये श्रावक के सर्वव्रत धारी संयती को दान देने सें अत्यंत हर्ष होता है और अव्रत में दान देते मन धडकता है, अव्रत में दान देता है सो तो लौकिक व्यवहार सें या समी सम सें देता है सावद्य दान सें अशुभ कर्मों का बंध जानता है सावद्य कार्य का पश्चात्ताप करनें सें कर्म ढीले अर्थात् सिथिल पडते हैं, कोई वैरागी श्रावक अव्रत में दान देने का शुद्ध मनसें त्याग करैं तो उसके इस अव्रत का पाप निरंतर टलता है, तात्परः कुपात्र दान है सो मोह कर्म के उदय सें हैं और सुपात्र दान है सो क्षयोपसम भाव है सुपात्र दान सें श्रावक के बारमां व्रत निपजता है तथा अशुभ कर्मों की निरजरा होती है इसका न्याय समदृष्टी ही जानते हैं, इस लिये सुपात्र दान की विधी पुनः वर्णन करते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

सहिजै जागां पडी हुश्रै सूझती। जब जोवै साधांरी बाटजी॥ तिणरै कर्म तणीं निरजरा हुश्रै। वले बंधे पुन्यरा थाटजी॥ इम॥ ४५॥ वाट जोवतां साध पधारिया। सेज्झा दान दे हर्षित थायजी॥ जाणैं धन दिहाडो धन घडी। म्हारे साधु उतरिया आयजी॥ इम॥ ४६॥ सेज्या दान देई शुद्ध साधुनें। केई करैं प्रति संसा-

रजी ॥ केई बंध पाडै शुद्ध गतितणूं । तेतो पामें भवजल पारजी ॥ इम ॥ ४७ ॥ सिज्भा थानक दीधां साधुनें । आगे तिरया जीव अनन्तजी ॥ वलि तिरयानें तिरसी घणां । इम भाषगया भगवंतजी ॥ इम ॥ ४८ ॥ दियां देवायां भलो जाणियां । निरदोष सुपात्र दानजी ॥ व्रत निपजै दीधां वस्तु आपरी । इम भाष्यो श्रीभगवानजी ॥ ॥ इम ॥ ४६ ॥ पुत्र त्रियादिक मा बापरा । परिणाम चढावै विशेषजी ॥ त्यांनें दान देवा सनमुख करै । शिखावैं शुद्ध विवेकजी ॥ इम ॥ ५० ॥ पुत्र त्रियादिक मा बापरा । दान देवारा रहै परिणामजी ॥ त्यांसूं हेत राखै जिन धर्मरो । शुद्ध श्रावक तिणरो नांमजी ॥ इम ॥ ५१ ॥ अदलक दान देतां देखी औरनें । त्यांरा पाडै नहिं परिणामजी ॥ कदा देणी न आवै आपसूं । तो करै तिणरा गुंण ग्रामजी ॥ इम ॥ ५२ ॥ गुंण सहणी न आवै दातारना । पोतै पिण दियो नहीं जायजी ॥ ये दोनूं अवगुंण दूरा तजै । श्री जिनवर नुं धर्म पायजी ॥ इम ॥ ५३ ॥ औरानें दान देतां देखनें । कोई बरज पाडै अंतरायजी ॥ तो उत्कष्टो बांधै

महा मोहणी । एहवो श्रावक न करै अन्यायजी ॥ ॥ इम ॥ ५४ ॥ केई अन्य तीर्थी जीमें नहीं । त्यांरा ठाकुरनें विन दीधां भोगजी ॥ नित्य बारै रसोई काढिनें । पोषै पुजारादिक लोगजी ॥ ॥ इम ॥ ५५ ॥ त्यांनें ठीक नहीं त्यांरा देवरी । देव लेवै न लेवै भोगजी ॥ तोही राखै छै त्यांरी आस्था । नित बर्त्तावै त्यांरो जोगजी ॥इम॥५६॥ तो ब्रतधारी शुद्ध श्रावक तणूं । धर्मसूं रंग्यो छै तन मनजी ॥ ते गुरुनी भावना भायां विनां । मुखमें किम घालै अन्नजी ॥ इम ॥ ५७ ॥ केई कांरै गुरु छै अन्य तीरथी । त्यांरी कौर सांचै मन ठैलजी ॥ तो साधु पधारयां आंगणौं । त्यांनें श्रावक नहीं गिणौं सहेलजी ॥ इम ॥ ५८ ॥ कोई कहै दान घणूं दिढावियो । येतो लेवारो कियो उपायजी ॥ एहवा ऊंधा बोलै शुद्ध बुद्धि विनां । पिण श्रावक न काढै वायजी ॥ इम ॥ ॥ ५६ ॥ दान देवारा परिणाम जेहना । तेतो सुंण २ हर्षित थायजी ॥ कहै ब्रत निपावारी वि- धि । मोनें सतगुरु दीनी बतायजी ॥ इम ॥६०॥ और ब्रत कह्या देवल समां । सिखाब्रत छै सिखा

समाननी ॥ ग्यांमें सघला सिरै व्रत बारमूं । ति-
णरी बुद्धिवंत करसी पिछानजी ॥ इम ॥ ६१ ॥
तिरणा तिरै तिरसी घणां । इण दान तणों प्रता-
पजी ॥ तिणमें शंका मूल न आंणवी । श्रीजिन
मुख सुं भाख्यो आपजी ॥ इम ॥ ६२ ॥ सूत्र
पुराण कुरान में । पात्र दान तणुं अधिकारजी ॥
ते पात्र कुपात्र नें ओलखी । बुद्धिवंत कोढ नि-
स्तारजी ॥ इम ॥ ६३ ॥ वले कहि २ नें कितरा
कहूं । इण दान तणां गुण ग्रामजी ॥ कोड जि-
ह्वा करि वरणव्यां । पूरा कहिणा न आवै ता-
मजी ॥ इम ॥ ६४ ॥ जोड कीधी बारमां व्रतरी ।
तेतां गुदवा सहर मंझारजी ॥ सम्वत् अट्ठारह बं-
तीसमें । वैशाख शुद बीज मंगलवारजी ॥ इम ॥
॥ ६५ ॥ इति ॥ स्वाम भीखनजी सोभता ।
जोई सूत्ररो न्यायजी ॥ भव जीवांनें प्रति बोधवा
बार व्रत दीया ओलखायजी ॥ इम ॥ ६६ ॥
। इति द्वादश व्रतकी जोड स्वामी श्रीभीखनजी कृत ।

॥ भावार्थ ॥

अपना मकान खाली होय उस में सचितादि बिखर नहीं रही होय प्रासुक होय तब श्रावक भावना भावै कि साधू पधारै तो मैं घर में ऐसा दान देके व्रत निपजाऊं कदा साधू पधारे जा-

यतो जोगगां देके मन में अत्यंत हर्षित होय विचार करै कि आज का दिन और आज की घडी धन्य हैं सो मेरे ऐसी योग वाई मिली मेरे यह मकान उपभोग में आताथा या अन्य अव्रती को उपभोग करातायथा जिस सें तो पाप लगता था अब सर्व व्रतियों के काम आरहा है सो व्रत निपज रहा है, यह दान देना महा मुश्किल है इस दान सें अनन्त संसारी का प्रति संसार हो के शुद्ध गति प्राप्त होती है, सज्झा दान साधुवों को देने सें गतकाल में अनन्ते जीव संसारमयी समुद्र सें तिरे वर्तमान में तिर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनन्ते जीव तिरेंगे, सुपात्रों को अपनी वस्तु देने सें बारमां व्रत होता है दिलाने और अनुमोदनें से निरजरा धर्म होता है ऐसा जानके पुत्र स्त्रियां मा बाप आदि परिवार वालों को सुपात्र दान देने की विधी सिखलाना और दान देने वालों सें धर्म की प्रीती रखना यह श्रावक का कर्तव्य है इस लिये सुपात्र दान देने वालों सें धर्मराग रखना शुद्ध श्रावक उसही का नाम है, जो कदा अपने सें न देणी आवें तो देने वालों का परिणाम स्थिल न करैं उनके गुन ग्राम करने सें धर्म होता है सुपात्र दान के दातार का गुन सहन न करना तथा आप न देना यह दोनूं अवगुन हैं श्री जिन धर्म पाके इन्हैं तजैं और देते हुए को अंतराय न करै अंतराय देने से महा मोहनीय कर्म बंधता है, देखो केई अन्य तीर्थ भी ऐसे नित्य नियमी हैं कि ठाकुरजी के भोग लगाये विना नहीं जीमते हैं अलबत्ता उनको यह मालुम तो नहीं है कि वो परमेश्वर निरंजन निराकार जोतिस्वरूपी अशरीरी भोजन करते हैं या नहीं परंतु प्रतीत रखके भक्ति करते हैं

तथा केई अन्यमती अपने गुरूकी सेवा सुश्रुषा भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं तो व्रतधारी श्रावक निरलोभी निरलालची निष्परिग्रही शुद्धसाधू मुनिराजोंकी अशणादि चौदह प्रकार का दान निरदोष देके सेवाभक्ति अवश्य करें, यही उपदेश है, तब कोई कहै अपने लेनेके लिये दानकी प्रशंसा बहोत की है ऐसी उलटी बात निरबुद्धि कहै, किन्तु श्रावकतो कहै कि हमें सद्-गुरूओं नें दान देने की विधि अनुग्रह करिके बताई है, क्यों-के इग्यारे व्रततो श्रावक जी चाहै जब निपजा सकता है परंतु बारमां व्रत सर्व व्रतों में श्रीकार धजा समान है सो तो साधू की जोगवाई मिलनेसें ही होताहै शास्त्रों में कहा है " दुलहाउं सुहादाई" अर्थात् शुद्ध दानके दातार दुर्लभहै सूत्रमें पुरानमें कुरा-नमें सब मतोंमें सुपात्र दानकी प्रशंसा है सुपात्र दान देके अनन्ते जीव तिरे तिररहे हैं तथा अनन्ते जीव तिरेंगे ऐसा जानके सुपात्र कुपात्र की यथार्थ पहिचान करिके सुपात्र दान देना चाहिये; यह बारमां व्रतकी जोड स्वामी श्रीभीखनजीनें गुदवा शहरमें सम्बत् १८५२ मिती वैशाख सुदी ३ मंगलवार को करी जिसका भावार्थ मैंनें मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो जिस का मुझ त्रिविध २ मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्रोटक छन्द ॥

यह द्वादशं व्रत आखिया जिन भाखिया आगम महीं। तसु ढाल बंध सुजोड नीको स्वाम

श्री भीखू कही ॥ तेहनुं भावारथ जांण लह्यो कह्यो गुलाब श्रावक इमसही । व्रत धारीये दुःख टारीये श्रीकालूगणी सुपसायही ॥१॥

आपका हितेच्छु

जोहरी गुलाबचंद लूणीया

जयपुर

॥ अथ ९९ अतिचार ॥

॥ दोहा ॥

चौदह अतिचार ज्ञानरा । पांच समकितरा जांन ॥ साठ बार व्रतां तणां । पंदरा कर्म्मादान ।१। सलेषणानां पांच छै । ये निन्नाणूं अतिचार ॥ टालै सघला भावसुं । ज पावें भवपार ॥२॥

॥ ढाल ॥

म्हेतो बीर बांदणानैं जावस्यां । तथा धर्म दलाली चित करै ॥ एदेसी ॥

अतिचार लागे ज्ञान नें । ते गिणतां चवदह थाय हो श्रावक जन ॥ जवाईधं वचा मेलियं ।

हीण अत्तर अधिक बोलायहो ॥श्रा॥ अतिचार लागे ज्ञाननें ॥श्रा॥ १ ॥ पद हींणो विनय हींणो करे । जोग हींण घोष हींण थायहो ॥श्रा॥ सुट्ठु दीनं दुट्ठु पडिच्छयं । अकाले करे सज्झायहो ॥ श्रा ॥२॥ काले सज्झाय करे नहीं । असज्झाय में करे सज्झायहो ॥श्रा॥ सज्झाय वेलां आलश करे । जब ज्ञान थांरो मैलो थायहो ॥ श्रा ॥ ३ ॥ हिव समकित नां दूषण कह्या । पांच मोटा अति-चारहो ॥ श्रा ॥ जांणे पिण आदरै नहीं । पालै निर अतिचारहो ॥श्रा॥ अतिचार लागे समकित भणीं ॥४॥ भगवंत भाष्या ते सुणि करे। शंका कंखा विदगंछ हो ॥श्रा॥ कुगुरु प्रशंसा जेकरे । मिथ्या संगकरे मन वंछहो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ५ ॥ दूषण लागे व्रतांभणी। ते पांच पांच अति चारहो ॥श्रा॥ जाणें पिण आदरै नहीं । पालै शुद्ध आचारहो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ६ ॥ जीव बांधे मारे निरदय पणें । करे कानांदिक छवी छेदहो ॥श्रा॥ घणूं भार पर खेपवे । मारे भात पांणीनुं विछेदहो ॥श्रा॥ अतिचार लागे व्रतां भणीं ॥ ७ ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणरा त्याग है । त्यां त्यां जीवांरा पांच अतिचार हो

॥ श्रा ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणारो आगार छै ।
त्यांनें मारयां नहीं दोष अतिचारहो ॥श्रा॥अ ॥
॥ ८ ॥ अण विचारयो कूडो आलदे । छानीबात
प्रकाशै तेहहो ॥ श्रा ॥ मर्म भेद कूडी साख दे ।
कूडा लेखा करै जेह हो ॥ श्रा ॥ अतिचार दूजाब्रत
नें ॥ ६ ॥ जिण २ झूठ बोलणारा त्याग छै । तिण
बोल्यां पांच अतिचारहो ॥ श्रा ॥ जिण २ झूठ
बोलणारो आगारछै । तिण बोल्यां दोष न लिगार
हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ १० ॥ चोरी वस्तु ले चोरां साझ
दे । वलि भांजे राजारो दांण हो ॥श्रा॥ कूडा तोला
कु मांपा करै । भेल सभेल दगो दे जांण हो ॥श्रा॥
अतिचार तीजाब्रतनें ॥११॥ जिण २ भांगै चोरीरा
त्याग छै ॥ तिण भांगै लागै अतिचार हो ॥ श्रा॥
जिण भांगै चोरी आगारछै। तिणमें ब्रत भंग नाहिं
लिगार हो ॥श्रा ॥ १२ ॥ थोडोई काल परिग्रही
अपरिग्रही थकी । गमन कीयो हुवै चाहिहो ॥श्रा॥
अनेक कीला कीधी तेहसें । पर विवाह दीनी हुवै
रायहो ॥ श्रा ॥ अतिचार चौथाब्रतनें ॥१३॥ वलि
कांम भोगरी बन्छा थकां । तीव्र अभिलाषा कीधी
हुवै त्हाय हो ॥ श्रा ॥ ज्यांनै त्यागी त्यांरो सेवन

कीयां । अतिचार कह्या जिनराय हो ॥श्रा॥ श्र ॥ ॥१४॥ जिण भांगे चौथोव्रत आदर्यो । ते भांगो भां-र्यां अति चारहो ॥श्रा॥ जे जे भांगा छूटा राखिया । ते सेव्यां नहिं दोष लिगारहो ॥श्रा ॥श्र॥ १५॥ खेत वथु हिरण सुवर्ण तणीं । मरयादा देवै लोपायहो ॥श्रा॥ धन धान द्विपद चौपद वधै । कुम्भी धातु अ-धिक राखै त्हायहो ॥श्रा॥ अतिचार पांचमांव्रतनें १६ ऊंची दिशि उलंघै मर्यादथी । नींची तिरछी इम उलं-घायहो ॥श्रा॥ येक दिशि दूजीमें मेलवो । दिशि संख्याव्रत भंगायहो ॥श्रा॥ अतिचार छट्टाव्रत नें ॥ १७ ॥ त्यारया सचित द्रव्यादिक भोगवै । वलि भेल सभेल करि खायहो ॥ श्रा ॥ गहणां कपडा-दिक अधिका भोगवै । उपभोग परिभोग अधिक सेवायहो ॥श्रा॥ अतिचार सातमां व्रतनें ॥१८॥ इंगालि कम्मादिक जे कह्या । पंदराही कर्मादान हो ॥श्रा॥ त्यांनें जांणों पिण आदरै नहीं ॥ पाप टालै ते बुद्धिवानहो ॥श्रा॥श्र॥ १९ ॥ काम क-था कुचेष्टा करै । वलि बोलै मुख अरिवाय हो ॥ ॥श्रा ॥ अधिकरण जोडि करै येकठा । उपभोग परिभोग वधायहो ॥श्रा॥ अतिचार आठमां व्रतनें

॥ २० ॥ येह पांचूंहीं अनर्थे सेवियां । जब लागै अतिचारहो ॥ श्रा ॥ अर्थ पिण सेव्यां पापछै । पिण व्रतनें नहीं दोष लिगार ॥ श्रा ॥ अ ॥ २१ ॥ मन बच कायानां जोगनें । पाडवा प्रवर्तायहो ॥ ॥श्रा॥ समाईमें समता न करि हुवै । अण पूगी पारी हुवै समायहो ॥श्रा॥२२॥ त्यागी वस्तु बाहर थी अणायले । वलि पाछी दे मोकलायहो ॥श्रा॥ शब्द रूप दिखाय सानीं करै । पुद्गल नांखी आपो जणायहो ॥श्रा॥ अतिचार दशमां व्रतनें ॥ २३ ॥ सेज्भा संथारो अपडि दुपडि लेवै । अण पूंजे पूंजै विपरीतहो ॥श्रा॥ इम उचारा दिकनीं भूमिका । पोसो पालै नहीं रूडी रीतहो ॥श्रा॥ अतिचार इग्यारमां व्रतनें ॥ २४ ॥ सचित मूंक्यो ढांक्यो वहरायदे । अतिक्रम कालनूं मांनहो ॥श्रा॥ आंपणी वस्तु पारकी करै । वलि देवै मच्छर दानहो ॥ श्रा ॥ अतिचार बारमां व्रतनें ॥ २५ ॥ सूभती वस्तु करै असूभती । असूभती करै सूजती तांमहो ॥श्रा॥ दान देवा न देवा कारणैं । बारमूं व्रत भांगै आंमहो ॥ श्रा ॥अ॥ २६ ॥ येह लोक परलोकरी वान्छा करै । जीवण मरणूं वन्छै ता-

महो ॥श्रा॥ काम भोग तणीं वन्छा करै । सले-
पणामें दोष लागै श्रांमहो ॥श्रा॥ येह अतिचार
सलेखणानां कह्या ॥ २७ ॥ हूं चक्रिवर्त होवुंतो
भलो । यह लोकरी वंछा मांहिहो ॥श्रा॥ हूं इन्द्रा-
दिक पद्वी पायजो । ते परलोक वंछा तांहिहो ॥
॥श्रा॥ येह अतिचार ॥ २८ ॥ जीवणूं मरणूं
वन्छां दोष छै । वलि वन्छयां कांमनें भोगहो ॥
॥श्रा॥ ये पांचुंहीं कर्तव्य पाडवा । तीनूंहीं कर-
णां नें तीन जोगहो ॥श्रा॥अ॥ २९ ॥ सघला
अतिचार भेला कियां । निन्नाणु कह्या जिन रा-
यहो ॥श्रा॥ ते टालै सघला भावसूं । तो आरा-
धक पद थायहो ॥ श्रावक जन ॥ अतिचार सर्व
इम जांणवा ॥२१॥ इति ॥ स्वामी श्री भीषनजीकृत

॥ अथ पडिमांधारी की ढाल ॥

॥ श्रीजयाचार्य कृत ॥

॥ दोहा ॥

प्रत्यक्ष और पंच में । भूला धारी भेख ॥ धर्म
कहै अव्रत मभों । कर रह्या कूडी टेक ॥१॥ श्राव-
कां नें जीमावियां । धर्म कहै कारितांण ॥ ते व्रत

अव्रत नहीं ओलख्यो । मिथ्या दृष्टी जाण ॥२॥ कहे पाडिमां धारी श्रावक भणीं । पोष्यां येकान्त धर्म ॥ त्यां पाडिमां धर्म न ओलख्यो । भूला अज्ञानी भर्म ॥ ३ ॥ पाडिमां तो धर्म मार्ग मुक्तिरो। अव्रत आज्ञा बार ॥ निर्णय कहूं छूं तेहनों । सांभल जो विस्तार ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

या अनुकम्पा जिन आज्ञा में ॥ एदेसी ॥

पहली पाडिमां में समकित शुद्ध पाले । पंच परमेश विना नमैं नांहीं ॥ पिण सम्यक् प्रमाणें व्रत नहीं धारया। ते अव्रत नहीं पाडिमां धर्म मांहि ॥ पडिमां धारयां रो निर्णय कीजे ॥ १ ॥ बीजी पडिमां में व्रत वधारे । पिण सामायक देशावगासी करै नांहीं ॥ जे व्रत धारया ते निरमल गुण छै । आगार ते नहीं छै धर्म मांहीं ॥ प ॥ २ ॥ तीजी में समकित व्रत छै निरमल । सामाइ देशावगासी पिण धारै । महिनां में छ पोषा करणी न आवे । ते व्रत पाडिमां अव्रत आज्ञा बारे ॥ प ॥ ३ ॥ चौथी पडिमां में पाछला गुण सघला । मास में

छ पोसा शुद्ध मांन ॥ पिण येक रात्री री उपाशक पडिमां । करणी न आवै निश्चल ध्यान ॥प॥४॥ पांचमीं पाडिमां में पाछला गुण सघला । पिण येक रात्री री पडिमां जांण ॥ स्नान नें रात्री भो- जन त्यागै । काछ न वालै समता आंणीं ॥ प ॥ ५ ॥ दिवश नुं शील रात्री नीं मर्यादां । ये पांचूं बोल अधिका जांण ॥ जघन्य येक दोय तीन दिवश लगि । उत्कृष्टा पांच मास पिछाण ॥ प ॥ ६ ॥ ये दिवश नुं शील ते तो छै पडिमां । रात्री आघार ते पडिमां नांहीं । आगार तेह तो अव्रत आश्रव । अव्रत छै ते तो अधर्म मांहीं ॥प॥७॥ छट्टी पाडिमां में सर्वथा शील व्रत । पाछला त्याग ते सर्व पालै ॥ सचित खावा नुं आगार ते अव्रत । उत्कृष्टी षट मास नीं निहाल ॥ प ॥ ८ ॥ सात- मी में पाछला गुन सघला । सचित खावारा त्याग ज कीधा ॥ पिण आरंभ नुं आगार ते अ- व्रत ॥ उत्कृष्टो सातमांस प्रसिद्धा ॥ प ॥ ६ ॥ आटमी में आरंभ करिबो त्यागयो । पिण आरंभ करावण री आगार ॥ पाछला त्याग सघला शुद्ध पालै । उत्कृष्टा आठ मांस विचार ॥ प ॥ १० ॥

नवमीं में आरंभ करावणुं त्याग्यो । पिण तिणरे अर्थे कीधो भोगवै आहार ॥ उत्कृष्टी नवमास नी पडिमां । पाछला त्याग सहित सुखकार ॥प॥११॥ दशमीं पडिमां में पाछला गुण सघला । पोतारै अर्थे कीधो भोगवै नांही ॥ खुर मुंड करावै तथा सिखा राखै । उत्कृष्टी दश महिनां तांई ॥प॥१२॥ न्यातीलारै वस्तुगम्यां तिण नें पूछ्यां । जांण तो हुवै तो कहै जाणुं सोय ॥ न जांणतो हुवै तो कहै नहिं जाणूं । त्यां रै सुखियी सुखे दुःखिये दुःखयो होय ॥ प ॥ १३ ॥ इग्यारमीं में साधु-रो भेष करि नें । पाछला त्याग पालै सुखदाय ॥ खुर मुंड तथा मांथै लोच करावै । पिण न्याती लारो प्रेम बंध टूटो नांय ॥प॥१४॥ न्यातीलारो पेज बंधन तिण कारण । न्यातीलारा घररो लेवै आहार ॥ और घरांरो लेणो त्याग्यो ते व्रत छै । पिण न्यातीलारो आगार ते अव्रत धार ॥ प ॥ १५ ॥ पडिमां धारी पांच में गुणठाणैं । तिणरी अत्याग रूप अव्रत श्रद्धै नांहि ॥ चौकडी स्युं देश व्रती कह्यो छै । इम कहै तिणरो जाब धारो मन मांहि ॥ प ॥ १६ ॥ सचित अचित सूझतो नें

असूझतो । यां न्यारां री अव्रत अनादिरी दाखी । सचित असूझतो त्याग्यो ते व्रत छै । बाकी आगार रह्यो ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १७ ॥ न्याती-ला अणन्यातीलारो आहार भोगवणों । आगार ते अव्रत ठेटरी होयो ॥ अणन्यातीलारो त्याग कियो ते व्रत छै । न्यातीलारो आगार ते अव्रत जोयो ॥ प ॥ १८ ॥ अज्ञात कुलरी साधूरै गोचरी । समवायंग उत्राध्ययन छै साखी ॥ पडिमा धारी रै न्यातीलारो प्रेम बंधन तिणसूं । न्यातीलारो लेवै ते अव्रत भाखी ॥प॥१९॥ किण क्रोडरुपयां रो परिग्रह राख्यो । वलि स्त्री पुत्रादिक परिवारः ॥ त्यांरो पेज बंधन रह्यो तेहिज अव्रत । सर्व छै । तिणरा परिग्रामभ्भार ॥ प ॥ २० ॥ सैंकडां गुमास्ता तिणरै कुमावै । हजारां रुपयांरो नफो पिण आवै । तिणरी अव्रतरो पाप लागै निरंतर । अशुभ जोग रूंध्या तिणरो पाप न थावै ॥ प ॥ २१ ॥ तोटा नफारो तो मालिक तेहिज ॥ सूक्षम पणैं ममता भाव निरंतर ॥ ये प्रत्यक्ष अव्रत उघाडी दीसै । बुद्धिवंत छांण करै अभ्यन्तर ॥ प ॥ २२ ॥ लाख रुपयांरो परिग्रह हूंतो । ते पोता नां मंत्री नें दीयो

भोलाई ॥ पछै इग्यारै पडिमां वहै तिण वेल्यां । ते रुपया छै किणरा परिग्रहा मांहीं ॥ प ॥ २३ ॥ मित्ररै अव्रत सहस्र नाणांरी । तिणनें लाखरी अव्रतरो पाप न लागै । हिव लाखरी अव्रतरो पाप किणनें । ये मालिक छै पडिमां धारी सागै ॥ प ॥ २४ ॥ कदा पडिमां में तिण काल कियो तो। मित्र न राखे तिणरी धणीयाप ॥ तिण धनरो धणीं तो पाडिमां धारी हूंतो । तिणसुं अव्रतरो तिणनें कह्यो पाप ॥ प ॥ २५ ॥ तिण पडिमां धारि नें कहै पडिमां में । जावज्जीव पंच आश्रव त्यागो । जब कहै म्हांरा भाव नहीं छै । तिण कारण आसा बंछा रही लागो ॥ प ॥ २६ ॥ उत्कृष्टो मांस इग्यारा पाछै । कायासूं आश्रव सेवणरो आगार ॥ तिणसूं काया पिण छकायनुं शस्त्र । तिणरी सार संभार ते आज्ञा बार ॥ प ॥ २७ ॥ सामाइक मांहि श्रावकरी आतमां अधिकरण । ते शस्त्र छकायनुं भाख्यो । सूत्र भगवतीरै सातमां शतके । पहिले उद्देसै श्रीजिन दाख्यो ॥प॥२८॥ सामाइक में धन भार्यादिकथी ॥ ममता भाव पेज बंधन त्हायो । आठमां शतकरै पंच में उद्देसै ।

धन भार्या तिणराहिज कह्या जिनरायो ॥ प ॥ २६ ॥ तिम पडिमां में पिण धन भार्यादिकरी । ममता भाव पेज बंधन जाणों । तिणसूं धन भार्यादिकरी अव्रत छै तिण नें । तिणरे पाप लागै छै निरंतर आंणों ॥ प ॥ ३० ॥ इण न्याय तिण नें कहिजे व्रताव्रती । धर्माधर्मी तिण नें काहिजे ॥ व्रत धर्म नें अव्रत अधर्म । पिण अव्रत में धर्म किम थापीजे ॥ प ॥ ३१ ॥ पडिमांधारी आहार करै अव्रत में । तिण नें धर्म बतावे नांहीं ॥ तो देणवाला नें धर्म किण विध होसी । दान दियो तिण अव्रत सेवण तांहि ॥ प ॥ ३२ ॥ धर्माधर्मी कहै पडिमां धारी नें । व्रताव्रती पिण तिण नें बतावै । वलि कहै तिणरै अव्रत नहीं रही बाकी । एहवा विकलां नें किम समझावै ॥ प ॥ ३३ ॥ व्रताव्रती कहै पिण अव्रत न कहै । आपरी भाषारा आप अजाण ॥ कोई कहै म्हांरी माता बांझडी । तिण सरिखो ते पिण मूर्ख जांण ॥ प ॥ ३४ ॥ पडिमां धारी आहार पाणी लेवै तै । कायानीं सार करै ते सावद्य व्यापारो । तिण नें पिण सावद्य जोग न थकै औ पिण विक-

लां रै पूरा अंधारो ॥ प ॥ ३५ ॥ जो पडिमां में सावद्य जोग नहीं बाकी । वलि अव्रत पिण थे तिणरै नहीं जाणुं । तो पडिमां में दीक्षा लेवण रो मन हुवै तो । किसा सावद्य जोगरा करै पच-खाणुं ॥ प ॥ ३६ ॥ जाव जीव सर्व सावद्य जोग-रा त्याग मांहि नें ॥ दीक्षा लेतां इम करै पच्च खाणों इणरै लेखै सावद्य जोगरो आगार ते त्याग्यो । समझो रे समझो थे मूढ अयाणों ॥ प ॥ ३७ ॥ पडिमां २ करि रह्या मूरख । ते पडिमां तो छै श्री-जिनधर्म ॥ जे पडिमां आदरतां अव्रत रहि छै ते सेव्यां सेवायां बंधसी कर्म ॥ प ॥ ३८ ॥ प्र-त्याख्यानी चोकडी रहि श्रावकरै । तिण चौकडी नें कोई अव्रत जाणैं । आप छांदै ऊंधी उटका मेलै । पीपल बांधी मूरख ज्यूं ताणै ॥ प ॥ ३९ ॥ अनन्तानुबंधी पहिलै गुण ठाणैं । अप्रत्याख्यानी चौथे गुण ठाणों । प्रत्याख्यानी पांच में रही बाकी । छट्ठा गुण ठाणाथकी संज्वल जाणों ॥ प ॥ ४० ॥ चौकडी नें अव्रत कहै त्यां रै लेखै । साधू के पिण संज्वल की रही सोय ॥ चौकडी खपावै तेहिज ब्रत श्रद्धै । तो चोथै गुणठाणैं व्रताव्रती होय ॥ प ॥ ४१ ॥

संज्वलनुं लोभ दशमें गुण ठाणें। तिण लेखै व्रताव्रती त्यांनेंहिज कहिजे ॥ जो साधुनें सर्व व्रती मांहि घालै तो। चोकडीनें अव्रत नांहि थापिजे ॥ प ॥ ४२ ॥ चोकडी तो छै कषायआश्रव। तिणनें अव्रत आश्रव कहै किणन्याय ॥ कषाय आश्रव नें अव्रतआश्रव। जुवा २ कह्या जिनराय ॥ प ॥ ४३ ॥ मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय। जोग आश्रव समवायंग पंचम ठाणें। येतो अव्रतआश्रव बीजो कह्यो जिन। कषाय आश्रव चौथो जांण ॥ प ॥ ४४ ॥ चोकडी तो चौथोआश्रवतिण नें। अव्रत कहै मूढ बिना विचार ॥ अव्रत तो छै दूजो आश्रव। समझो रे समझो थे मूढ गिमार ॥प॥४५॥ सोलाही कषाय छै कषायआश्रव। बारा नें कषाय आश्रव बतावै ॥ च्यार कषाय नें कहै अव्रतआश्रव। गालांरा गोला घड घड चलावै ॥ प ॥ ४६ ॥ कषायरातो त्याग किया नहिं होवै। येहनां कर्म घट्यां गुण प्रगटै उदारो ॥ अव्रतरा त्याग किया हुवै व्रती। तिणसूं कषायनें अव्रत आश्रव न्यारो ॥ ॥ प ॥ ४७ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी।

चोकडी नैं अव्रत अतजाणों ॥ पडिमां धारीरे अव्रत आहारादिकरी । पेज बंधण न्यातीलारो पिछाणों ॥ प ॥ ४८ ॥ पडिमां धारीनें समण भूए कह्या छै । ते पिण देशथी उंपमां जाणों ॥ अंतगडदशामें कह्यो द्वारका नें । प्रत्यक्ष देव लोक भूय पिछाणो ॥ प ॥ ४९ ॥ जिन नहिं पिण जिनवर सरिषा । थेवरां नैं कह्या उववाई मांहीं ॥ अनन्त गुण फेर त्यांरा ज्ञानरै मांहीं । पिण देश थकी उंपमां दीधी बताई ॥ प ॥ ५० ॥ चक्रिवरतरा अश्वरतन नें । क्षमारे लेखै कह्यो साधू सरीसो ॥ जम्बू द्वीप पन्नती में श्रीजिन भाख्यो । ए पिण देशथी उंपमां दीसो ॥प॥५१॥ तिम पडिमां धारी नें कह्यो साधु सरीखो । ते पिण देशथी उंपमां जाणों । पडिमां विचै तो संथारो अधिक छै । ते संथारामें पिण ग्रहस्थ पिछणों ॥ ॥ प ॥ ५२ ॥ उपासगदशा में कह्यो गौतमनें । आणंदश्रावक संथारा मांह्यो ॥ हूं ग्रस्थावास बसतो ग्रहस्थ छूं । मोनें इतनुं अवधि ज्ञान ऊपनों आयो ॥ प ॥ ५३ ॥ संथारा में पिण ग्रहस्थ कहिजे । तो पडिमा में ग्रहस्थ न कहै किण लेख॥

इण न्याय पडिमां धारीनें ग्रहस्थ कहिजे । तिणरो खाणु पीणों अव्रत में देख ॥ प ॥ ५४ ॥ ग्रहस्थरी वैयावच करै करावै अनुमोदे तो साधूनें वीर कह्यो अणाचार ॥ दशवैकालिकरै तीजै अध्ययनें । तो ग्रहस्थ नें पिण धर्म नहीं छै लिगार ॥ प ॥ ५५ ॥ इक्यावन बोल सेव्यां अणाचार साधूनें । तो ग्रहस्थ सेवै तिणमें पाप कर्म ॥ ज्यूं ग्रहस्थरी वैयावच अणाचार साधूनें । ग्रहस्थनें किण विध होसी धर्म ॥ प ॥ ५६ ॥ ग्रहस्थरी वैयावच अणाचार मैं कही जिन । तो पडिमां धारि पिण ग्रहस्थी जाणूं ॥ तिणनें अशणादिक देवै तो व्यावच । तिणमें धर्म किहांथी होसी रे अयाणं ॥ प ॥ ५७ ॥ ग्रहस्थनें दान दीधां अनुमोद्यां । साधुनें प्रायश्चित आवै चौमासी ॥ निसीथरै पंदरमें उद्देसै भाख्यो । तो ग्रहस्थनें धर्म किण विध थासी ॥ प ॥ ५८ ॥ तो पडिमां धारीनें पिण ग्रहस्थ कहीजे । तिण दाननें साधु अनुमोदै तो दंड आवै ॥ तो देवण वालानें धर्म किम होसी । बुद्धिवंत सूत्र नूं न्याय मिलावै ॥ ॥ प ॥ ५९ ॥ श्रावकरो खाणों पीणों सर्व

अव्रत में । सुयगडा अंग अठार में साखी ॥ वलि सूत्र उववाईरै प्रश्न बीस में । ते अव्रत सेव्यां कहै धर्म अनाखी ॥ प ॥ ६० ॥ अव्रत नें भाव शस्त्र कह्यो छै । सूत्र ठाणा अंग रे दश में ठाणैं । ते अव्रत सेयां सेवायां । धर्म पुन्य अज्ञानी जाणें ॥ ६१ ॥ पडिमां धारी नें तो कह्यो बाल पंडित । वलि व्रताव्रती तिण नें कहिजे ॥ धर्माधर्मी पिण कह्यो छै तिण नें । बुद्धिवंत न्याय विचारी लीजे ॥ प ॥ ६२ ॥ अधर्मी रै विषै रह्यो असंजती । तिण अधर्म नैं कियो अंगीकार ॥ धर्मी नैं विषै रह्यो संजती । ते धर्म आदरी नें विचरै उदार ॥ प ॥ ६३ ॥ धर्माधर्मी में रह्यो संजतासंजती । तिण धर्म अधर्म कियो अंगीकार ॥ सूत्र भगवती रे सतर में शतकै । पाहिलै उद्देस कह्यो विस्तार ॥ प ॥ ६४ ॥ व्रत ते धर्म अधर्म अव्रत ते । अव्रत सेवायां धर्म न होय ॥ पडिमां धारी नें श्रमण भूए कह्यो छै । ते देशथकी ओपमां अवलोय ॥ प ॥ ६५ ॥ सघला ही श्रावक भेला करै तो । येक साधूरै तुल्य न आवै ॥ उत्राध्ययन पंचम अध्ययनें । तो पडिमां धारी साधू

क्रिमथावै ॥ ६६ ॥ वलि पोसा में सावद्यरो आ-
गार न श्रद्धै । ये पिण विकलां रे पूरो अंधारो ॥
समायक में आत्मां शस्त्र कहिजे । तिम पोसा में
पिण शस्त्र विचारो ॥ प ॥ ६७ ॥ वलि यत्तन करै
गहणा वस्त्र कायारा । ते पिण सावद्य जोग प्रसि-
द्धा । सर्व सावद्य जोगरा त्याग साधां रै । इण
सर्व सावद्यरा त्याग न कीधा ॥ प ॥६८॥ वलि
पुत्र न्यातीला परिग्रह सें । ममत्व भाव पेज बंधन
पूरो ॥ वादर पणें त्यार्ग्यां ते पाप टालियो । पिण
सूक्षम पणों तो न कियो दूरो ॥ प ॥ ६९ ॥ छै
पोसा मांस में करै कोई श्रावक । येक वर्षरा बहो-
त्तर थायो । तीमत्तरमूं पोसो सम्वतसरीनूं । यां दिनां
रो व्याज लेवै किण न्यायो ॥ प ॥ ७० ॥ सैंक-
डां गुमास्ता कमावै तिणरै । इतरा दिनांरो नफो
आवै घर संभारो ॥ तो त्यांरो पिण तेहिज मालि-
क छै । इण लेखे सूक्षमपणे रह्यो आगारो ॥ प ॥
७१ ॥ इमहिज आगार पडिमां धारी ते पिण ।
आगार में धर्म मूल म जाणों ॥ पडिमां ते व्रत
आगार ते अव्रत । यां दोयां नें रूडी रीत पिछा-
णों ॥ प ॥ ७२ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी ।

अव्रत सेयां धर्म म थापो ॥ धर्मरी आज्ञा देवै तीर्थंकर। अव्रतरी आज्ञा न देवै जिन आपो ॥ प ॥ ७३ ॥ पडिमां धारीरी अव्रत उलखावन। जोड कीधी पाली शहर मंझारो ॥ सम्वत् अठारह नें वर्ष चोराणुवैं। भादवा विद येकम गुरुवारो ॥ प ॥ ७४ ॥

॥ अथ तीनमनोरथ ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमुं अरिहंत सिद्ध वलि आचारज उवझाय।
साधु सकल पद वंदतां आनंद मङ्गल थाय ॥ १॥
श्रीजिन वर स्वमुख थकी तीजा अङ्ग मझार ।
तीजै ठाणैं आखिया तीन मनोरथ सार ॥ २ ॥
श्रावक व्रत धारक जिके चिन्तवतां सुख कार ॥
कर्म महा अघ निरजरै पामैं भव नों पार ॥३॥

॥ ढाल ॥

भावैं कृष्ण मुरार, धृक्कार संसार नैंरे ॥ एदेशी ॥

प्रथम मनोरथ मांहि, श्रावक इम चिन्तवैरे । ये आरंभ दुःख दाय, परिग्रहथी हुवैरै ॥ १ ॥ महा अनरथ नुं मूल, परिग्रह जिन कह्यारे । किंचित नें वा लस्थूल, पंच भेदैं ग्रह्योरे ॥२॥

खेतु वथु दिक जान, हिरएय सुवर्ण सहीरे । कुम्भिधातु धन धान, द्विपद चौपद मवीरे ॥ ३ ॥ यथा शक्ति प्रमाण, त्याग उपरान्त ही । पंचम व्रत गुन स्थान । करण जोगवन्त ही ॥४॥ जे राख्यो आगार, ते अव्रत द्वार हैं । देयां देवायां तार, पाप संचार हैं ॥ ५ ॥ सचित अचित जे वस्तु, आहार नें पांणियां सावद्य कार्य समस्त, भोगायां असो जांणियां ॥ ६ ॥ हिन्सा हुवै षटकाय, तणीं ग्रहवास में । जिन मुनि आंण न ताय, धर्म नहीं जासमें ॥ ७ ॥ आरंभ परिग्रह येह, कुगति दातार हैं । क्रोध मान माया लोभ, तणुं कारण हार हैं ॥ ८ ॥ संजम समकित कल्प, तरु नों भंजनूं । महा मंद बुद्धि अज्ञान, तणों मन रंजनूं ॥ ९ ॥ मांठी लेश्या होय, आर्त रौद्र ध्यान नें । न्याय न सूझै कोय । लिप्त धनवान नें ॥ १० ॥ सुमति धाचि सौभाग्य, विनासण यह ही । जन्म मरण भय अथाग, हुवै परिग्रह थकी ॥ ११ ॥ कडवा कर्म विपाक, तणों हेतु सधै । दीधै तृष्णा वेल, विषय इन्द्री वधै ॥ १२ दारुण कर्कस दुःख वेदन असराल ही । कूड कपट परपंच करै विकराल ही ॥१३॥ इण सरीषो नहि मोह पास, मति बंध हैं । स्नेह राग करि जास, मूर्छा बंध हैं ॥ १४ ॥ दान कुपात्र दुरगति, दायक जिन कहै । परिग्रहरूपी दवाय ते थी शिव किमलहै ॥ १५ ॥ परणां कामनीं मीत, विनासै स्यात मैं । कुल मर्यादनीं रीत, छांडै हलि न्याति में ॥ १६ ॥ यहवो आरंभ परिग्रह, जे दिन त्याग स्यूं । थासे ते दिन धन्य, अतस वैराग स्यूं ॥ १७ ॥ बाह्य अभ्यन्तर ग्रंथ तणी मूर्छा तजूं । प्रगटै भल रवि तेह, नांम प्रभु नें भजूं ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

दूजो मनोरथ चिन्तवै, श्रावक जे व्रत धार ।
तन धन जोवन कारमूं, विणसंता नहिं वार ॥ १ ॥
मात पिता बंधव त्रीया, पुत्रादिक परिवार ।
स्वारथ लग सहुको सगा, सही संसार असार ॥ २ ॥
ग्रह वासै हिवडां वसूं, चारित मोह जे कर्म ।
क्षय उपसमियां थी कदा, लेस्यूं चारित्र धर्म ॥ ३ ॥

॥ ढाल दूजी ॥

वैरागे मन वालीयो तथा कृष्ण भावे रूडी भावनां एदेसी ।

धन २ संजम धरि मुनी । त्याग्यो ते संसार ॥ पंच महाव्रत धारका । पालैं पंच आचार ॥ धन २ संजम धर मुनी ॥१॥ श्री जिन आणां बाहिरो । सावद्य कारज ताय ॥ नहिं आदेश दे तेहनूं । मौन धार मुनि राय ॥ धन २ ॥ २ ॥ दश विध यति धर्म धारियो । यती नांम कहिवाय ॥ जीता विषय इन्द्रियां तणीं । द्वितिय अर्थ सुख दाय ॥ धन २ ॥ ३ ॥ दोष बंयालीस टालके । ले भिक्षू शुद्ध आहार ॥ कह्या भिक्षू ये गुन थकी । भेदै कर्म अपार ॥ धन २ ॥ ४ ॥ साधै शिव मग साधनां । साधु महा गुण खान ॥ द्वादश भेदैं तप करै । तपसी नांम वखाण ॥ धन २ ॥ ५ ॥ मतहणों २ जीवनैं । दे उपदेश महन्त ॥ माहण म्हा गुण आगला । शान्तिभाव ते शंत ॥ धन२ ॥ ॥ ६ ॥ कल्याण कारी ते भणीं । कल्याणिक मुनि नांम ॥ विघ्नोपसम कारी पणैं । मंगलीक अभिराम ॥ धन २ ॥ ७ ॥

धर्मोपदेशक गुण थकी । पूजनीक तसु पाय ॥ तीन लोकना अधपती । धर्म देव मुनिराय ॥ धन २ ॥ ८ ॥ चित्त परसन दरशन तसु । वैस सदा सुख कार ॥ नव विध पालै ब्रह्म कृया । बलिहारी ब्रह्मचार ॥ धन २ ॥ ९ ॥ जन्म सफल कीयो महा ऋषी । षट काया प्रतिपाल ॥ भवसागर में डूबतां । जिहाज समान दयाल ॥ धन २ ॥ १० ॥ स्नेह पास नहिं केहसूं । सम्वेगी वैराग ॥ ग्रंथी साग निर्ग्रंथहै । महकत सुयस अथाग ॥ धन २ ॥ ११ ॥ शुद्ध कृया में श्रम करै । श्रमण कहिजे तेह ॥ योग विमल साधै सदा । तिणसुं योगी केहह ॥ ॥ धन २ ॥ १२ ॥ आर्जव आर्जव भावथी । मार्दव मार्दव भाव ॥ शौच शुची कृयाभली । करता मुक्ति उपाय ॥धन२॥ ॥ १२ ॥ धर्म विराज विराजै सदा । सार्थ वाह सुविचार ॥ धर्म कटक दल जीतवा । सेनापति व्रत धार ॥ धन २ ॥१४॥ मन वच काया गोपवै । सुमती पच प्रकार ॥ इन्द्रादिक स्व-सुख कारी । न लहै गुणनों पार ॥ धन २ ॥ १५ ॥ सबला इकवीस दोष ज । टालै ते भल रीत ॥ तीन तीस आशातनां करै नहिं सुविनीत ॥ धन २ ॥ १६ ॥ आचारज उवज्झा-यरी । व्यावच सें धर प्यार ॥ तपसी लघू पुन ग्लाननैं । वस्त्रादिक दे आहार ॥ धन २ ॥ १७ ॥ भव भ्रम भमता जीवनें । तारण तरण समान ॥ गहन वंतार संसारनो । ल्यावै शिव मग स्थान ॥ धन २ ॥ १८ ॥ चंद्र तणीं पर निरमला । तम मिथ्या मति नाश ॥ सागर सम गिर सारिखा । रविवत ज्ञान प्रकाश॥ ॥ धन २ ॥ १९ ॥ जिन भाषित वाषित सदा । साधु श्राव-क नें धर्म ॥ ज्ञान दिप कर केवली । पालै क्षमा धर्म ॥धन २॥ ॥ २० ॥ श्रावक भावै विरदना । ध्यावै निज ध्येय ध्यान ॥

अकरता पद परिणमें । धन २ ते गुणवान ॥ धन २ ॥ २१ ॥ निन्दत वंदत सम पखैं । राग द्वेष नहिं होय ॥ जस अपजस जीवण मरणमें हर्ष सोग नहिं कोय ॥ धन २ ॥ २२ ॥ सफल जमारो धन घडी । आवै जाग्रत जेह ॥ अमति वंध गायु परै । तजी कुटम्ब थीं नेह ॥ धन २ ॥ २३ ॥ चारित्र मोह त्तयोप सम्यां । हूं पहवो व्रत धार ॥ धार्स्यूं ते दिन धन घडी । आनन्द हर्ष अपार ॥ धन २ ॥ २४ ॥

॥ दोहा ॥

तीजो मनोरथ चिन्तवै, मनमें श्रावक येम ।
संजम ग्रहि शुभ भावसें, लिया निभावुं नेम ॥१॥
ये संसार अथाध में, भमियो काल अनन्त ।
बहु षटरश भोजन किया, समता नहिं उपजन्त ॥२॥
चरण सहित अणशण करूं, पादोपगमन संथार ।
अवशर मरण तणौं वलि, होय जो सरणां च्यार ॥३॥

॥ ढाल ॥

रहो २ राजेसरा केशरिया तथा हूं तुज आगल सीकहूं कन्हईया एदेशी ।

शुभाशुभ पुद्गल फरासिया ॥ गुणवंता ॥ षटत्रण दिशनूं आहार हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ दुःगंध सुगंध फरस आठही ॥ ॥ गु ॥ पंच वरण रस धारही ॥ गुणवंता ॥ श्रावक ॥ भावै यहवी भावनां गुणवंता ॥ १ ॥ मोटी माया मोहणी ॥ गु ॥

खोटी पुद्गल पर्यायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ उदय थयां दुःख नीप-जै ॥ गु ॥ वेदै चेतन रायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ २ ॥ प्रकृति अठवीसें करी ॥ गु ॥ क्रोध मान माया लोभहो ॥ गु ॥ चिहुं २ भेदें संचरै ॥ गु ॥ पामैं चेतन खोभहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ३ ॥ हासि रत्तारत्त भय वलि ॥ गु ॥ सोग दुगंछा थायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्त्री पुरुष नपुंशक तिहुं ॥गु॥ मोह चा-रित कहिवायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ४ ॥ दरशन मोह उदय थकी ॥ गु ॥ मिच्छत समकित जानहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मिश्र मोहनी ये तिहुं ॥ गु ॥ दाबै निजगुन खान हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ५ ॥ असाता वेदनोदय ॥ गु ॥ भूख तृषादि पीडंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ लाभ भोगान्तर क्षयोपसम्यां ॥ गु ॥ भोग सक्ति पावंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ६ ॥ नाम उदय थी सहु मिलै ॥ गु ॥ गमता अणगमता भोग हो ॥ गु ॥श्रा॥ विविध प्रकारे भोगवै ॥ गु ॥ शरीरादि रोग्य आरोग्य हो ॥गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ७ ॥ वार अनन्त सुख दुःख सह्या ॥ गु ॥ भव भव भमियो जीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्वर्ग नरक फुन मनुष्य में ॥ गु ॥ तिर्यंच गति में अतीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥८॥ अनन्त भव मम आहारिया ॥ गु ॥ अनन्त पुद्गल पर्याय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ इक इक लोकाकाश में ॥ गु ॥ वार अनन्त [illegible] हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ९ ॥ भोजन कीया इण आतमां ॥ गु ॥ बहु मूलनों तंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ इम जांणी [illegible] पर ॥ गु ॥ हुवै अन्तर भेद हो ॥गु॥श्रा॥ भावै ॥ १० ॥ [illegible] ने पापनां ॥ गु ॥ पातक सवे आलोय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ निंदै [illegible] ने पदा ॥ गु ॥ मलय रहित सहु कोय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ११ ॥ [illegible] चौरासी योनि में ॥ गु ॥

वारम्वार खमाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ राग द्वेष तज सहु थकी ॥ ॥ गु ॥ हर्ष सोग नहीं कांग हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १२ ॥ च्यार प्रकार आहार जे ॥ गु ॥ त्यागे ममता रहित हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ पंच आश्रव पचखी करी ॥ गु ॥ पादोपगमन सहीत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥१३॥ जंगम स्थावर सम्पति ॥ गु ॥ द्विपद चापद वोसराय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अरिहन्त सिद्ध साधु ध्यान थी ॥ गु ॥ शिवगति नेड़ी थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥भावे ॥ ॥ १४ ॥ यह लोक पर लोकनीं ॥ गु ॥ जीवितव्य मरण सधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ आसा नहीं काम भोगरी ॥ गु ॥ सम परिणाम सुधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १५ ॥ अन्त समां में यहवो ॥ गु ॥ पण्डित मरण जे थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मनरा मनोरथ जदि फले ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष मवाय हो ॥ गु ॥श्रा॥ ॥ भावे ॥ १६ ॥ धन्य दिवश धन्य जे घड़ी ॥ गु ॥ आराधक पद पाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अल्प भवांरे आंतरे ॥ गु ॥ सिद्धगति में ते जाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १७ ॥ श्री भिक्षू गुण आगला ॥ गु ॥ प्रगट वतायो राह हो ॥ गु ॥ जिन धर्म जिनआणा मही ॥ गु ॥ आज्ञा बाहर नांहि हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १८ ॥ भारीमाल गणीं तने पटे ॥ गु ॥ तृतीय तखत ऋषराय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ जय वर पट तुर्य सूर्य सा ॥ गु ॥ पंचम मघवा कहवाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १६ ॥ माणक माणक सारिषा ॥ वर्तमान गच्छ स्थम्भ हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ नांमें डाल सोभला ॥ गु ॥ भविजन निरख अचम्भ हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ २० ॥ उगनी सय पेंसट वलि ॥गु॥ मिगसर शिन पख पेख हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ श्रावक गुलाब कहे

भलैं ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष विशेख हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ भाव येहवी भावना गुण वंता ॥ २१ ॥

॥ कलश ॥ गीतकछन्द ॥

इमत्रण मनोरथ चिन्तवे जे भविक नित मतेजाण हीं ॥ अघ राशि कर्म विनास थांव पावै पद निरवाण हीं ॥ गणी डालचन्द दिनंद सम मम गुरू तास पसाय हीं ॥ कहै श्रमणोपासक गुलाबचन्द आनन्द हर्ष अथाय हीं ॥ १ ॥

इति तीनमनोरथम् ॥

॥ अथ दशविधि श्रावक आराधना ॥

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्तादिक सहु । पांचू पद सुखकार ॥
मन वचनें काया करी । करूं तसु नमस्कार ॥ १ ॥
अरिहंत सिद्ध साहु वलि । केवली भाषित धर्म ॥
ये च्यारूं सरणां वली । पामें शिव सुख परम ॥ २ ॥
श्रावक नें वलि श्राविका । व्रत धारक हुवै जेह ॥
केवली भाषित धर्म में । राखे नहीं संदेह ॥ ३ ॥
[illegible] । श्री जिन मति सूं प्यार ॥
[illegible] चित नहीं । लावै नहीं सुरकार ॥ ४ ॥
[illegible] । लागे दोष विचार ॥
[illegible] । वन्द करें अङ्गीकार ॥ ५ ॥

मुनि आलोवै दश विधै । आराधन सुखकार ॥
तिणपरः श्रावक पडिक में । समकित व्रत अणाचार॥६॥
आराधनां जयाचार्य कृत। जोड पुरातन जांन ॥
तिण अनुसारे मैं कहुं । सुणिजो चतुर सुजान॥७॥

॥ ढाल प्रथम ॥

॥ वेदक जग विरला ॥ एदेशी ॥

॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ए आकंडो ॥

श्रीजिन धर्म मांहि जे रसिया॥ त्यांरे देव गुरु दिल वसिया-रे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ हाड वलि जे हाड नीं मींभी ॥ धर्म थकी रहै भीजीरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ १ ॥ कुगुरु कुदेवनो वंछै न सेवा । धीर वीर गुन गेहवारे ॥ श्रा ॥ धर्म मैं दृढ रहै नितमेवा ॥ अडिग हैं सुरगिर जेहवारे ॥ श्रा ॥ ॥ २ ॥ व्रत पचखाण सूधा जे पालै । निज आतम उज्वालैरे श्रा ॥ अतिक्रम व्यतिक्रम नांहि संभालै । अतिचार अणाचार टालैरे ॥ श्रा ॥ ३ ॥ कर्म योग दोष लागै किवारे । तो डंड करै अङ्गीकाररे ॥ श्रा ॥ विहुंटक आलोयणा लेवै । पक्खी दिन तो अवश मेवरे ॥ श्रा ॥ ४ ॥ चौमासी नहीं चूकै लि-गार । शुद्ध परिणाम सुविचाररे ॥ श्रा ॥ पर्व छमच्छर आवै जिवारे ॥ पोषध अष्ट पोहर धारैरे ॥ श्रा ॥ ५ ॥ ध्यान करी शुभ भावना भावै । लखचोरासी योनि खमावैरे ॥श्रा॥ प्रमाद छांडी निज ध्येय ध्यावै। आराधक पद पावैरे ॥श्रा॥६॥ मत संता-रो फुन हलु करमीं । जगवल्भ प्रिय धर्मीरे ॥ श्रा ॥ अवालोयण किम करत उदार । आखुं ते अधिकाररे ॥ श्रा ॥ ७ ॥ सम-

कित रतन जतन थी राखै । न हुवै दुःख शिव सुख चाखैरे ॥ श्रा ॥ जिम कर्दम थी पङ्कज न्यारो । तिम संसार मभारोरे ॥ श्रा ॥ ८ ॥ लूखे परिणाम वसै घरवासा । राखै छांडणरी आगार ॥ श्रा ॥ इण भव परभव मैं सुख पावे । ढाल प्रथम ये गावैरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम द्वार आलोयणा । द्वितीय व्रत आरोप ॥
तृतीय जीव खमावना । शुद्ध मनथी तज कोप ॥ १ ॥
चौथे पापज परहरै । पंचमें शरणां च्यार ॥
छठ्ठे दुकृत निन्दवा । सप्तम सुकृत सार ॥ २ ॥
भावै रूडी भावना । अष्टम द्वार मभार ॥
नवमें अणशण चित धरै । दशम सुमर नवकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

(चौपाई नीं देशी)

सुणिये इव प्रथम द्वार । तिणमें आलवणां अधिकार ॥
ज्ञान दरशन चारित तपसार । पडिक्कमें व्रत अणाचार ॥१॥
श्रीजिनवर वचन उदार । सांचा श्रद्धया न हुवै किणवार ॥
तसु साखी नहिं प्रतीत । रुचिया न हुवै सुवदीत ॥२॥
अक्षर हीन लघु बोलतां । आलस करि अर्थ खोलतां ॥
पद हीण करता हुवै दोष । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥३॥
काल विनय विध आठ प्रकार । भणै जे ज्ञान आचार ॥
विनय रहित भणतां हुवै हान । तसु मिच्छामि दुक्कडं जान ॥४॥

पाठ अर्थ विरुद्ध जे कीनो । मिथ्या अर्थ सांचो कहदीनो ॥ कीधी ज्ञान आशातनां कोय । थावो मिच्छामि दोक्कडं मोय ॥ ५ ॥ भाजन विन ज्ञान भणायो । सांचो अर्थ झूठो दरशायो ॥ सूत्र विरुद्ध प्ररूपणां कीधी । लेऊं आलवणा तसु सीधी ॥ ६ ॥ पाखण्डियांरा वचन सुहाया । सूत्रां में गपोडा बताया ॥ शङ्का पाडो हुवै दूजारै । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सार ॥ ७ ॥ व्याख्यानादिकरै म्हांय । सुणतांरै दीधी अंतराय ॥ क्रोध वसथी विवध प्रकार । भाषा बोली विना विचार ॥ ८ ॥ पांचज्ञान निन्दविया सोय । वलि गोपविया हुवै कोय ॥ निन्दा ज्ञानी तणीं करी जेह ॥ थावो मिच्छामि दोक्कडं तेह ॥ ९ ॥ इम दरशनरां अतिचार । आलवणा करूं तसु सार ॥ आठ गुण जे सम्यक् प्रकार । धारया न हुवै विनय विचार ॥ १० ॥ कुगुरु कु देवांरी तांण । प्रशंशा करी हुवै जांण ॥ वलि सासता परिचा मैं रक्त । करी हुवै सांरी भक्त ॥ ११ ॥ जीवाजीव अजीव नें जीव । धर्म अधर्माधर्म अतीव ॥ साहु असाहु साहु नें असाध । मार्ग कुमार्ग इम हिज लाध ॥ १२ ॥ मोक्ष चाला नें अमोक्ष गयो । हांसि स्वपरवसथी कह्यो । ये सर्व बोलांरो सोय । थावो मिच्छामि दुक्कडं गोय ॥ १३ ॥ सूत्र साधु अनें छक्काय । फुन सिद्ध संसारी म्हांय ॥ शङ्का राखी हुवै किण वार । होज्यो मिच्छामि दोक्कडं सार ॥ १४ ॥ गहन वार्ता आगम में आई । सांभल नें लेखो लगाई । विपरीत सरधा समझाई । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं गाई ॥ १५ ॥ कह्या साधू साध्वी जान । येकम पूनम चंदसमान ॥ अनन्त गुण फेर संजम मांहि । सांमैं शङ्का राखी हुवै कांहि ॥ १६ ॥ किञ्चित दोष लगावता देखी । संजम श्रद्धयो न हुवै धरिसेखी ॥ पर पूठ निन्दा करी कोय

पावो मिच्छामि दुक्कडं मोय ॥ १७ ॥ करडी प्रकृती किणीरी
जांणी । चारित में शङ्का आंणी ॥ थयो गण अपराधी किवार ।
तेऊं मिच्छामि दुक्कडं धार ॥ १८ ॥ गणिनाथ नां अवगुण
गाया । वलि तणधी कलुप भाव आया ॥ सुविनीतरा भाव
फिरायो । तसु मिच्छामि दुक्कडं थायो ॥१९॥ देव गुरु धर्म उदार ।
देश सर्व शंका दिल धार ॥ तेहनुं मिच्छामि दुक्कडं सार । हिव
शंका न राखूं लिगार ॥ २० ॥ कंखा अनमति नीं वंछा जानी
वांछि कुदावंत कुगल ध्यानी ॥ तसु प्रशंशा सेवा कीध । थावो
मिच्छामि दुक्कडं प्रसिद्ध ॥ २१ ॥ विदगंछा संदेह फल मांहीं ।
पोते राखी औरानें रखाही ॥ तेहनुं त्रिविध २ मोय । थावो
मिच्छामि दुक्कडं तोय ॥२२॥ जिन आज्ञा में धर्म न जाण्यों ।
आज्ञा बाहर धर्म पखान्यों ॥ हिन्सा कीयां धर्म कह्यो कोय ।
थावो मिच्छामि दुक्कड मोय ॥ २३ ॥ पंच प्रमेष्टी नां गुन गाऊं ।
सांची श्रद्धा हृदा में अणाऊं ॥ म्हारे शिव सुखनी हद च्हाय ।
तिणां आवश्य रो करूं उपाय ॥ २४ ॥ मोह कर्म पतलो नित
पाडसूं । भवसागर पार उतरसूं । दूजी ढाल में प्रथम द्वार । वलि
मांगे वहु विस्तार ॥ २५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ढाल ॥

सल्य कोई मत राखज्यो ॥ एदेशी ॥

अतालोयण मैं करूं । शुद्ध परिणामें होई रे ॥ भोला बालक नींपरै । म्हांरी आतमां लेऊं धोई रे ॥ अता ॥ १ ॥ त्रश जीव गाढै बांधणैं । बांध्या हुवै किण दीसो रे ॥ गाढ घा-वे घालीया । अतिभार घाल्या करि रीसो रे ॥ थावो मिच्छा-मि दुक्कडं तेहनूं ॥ २ ॥ चामडी छेदी शस्त्र थी । भात पाणी-नों विछोहा रे ॥ विन अपराधे आकूटी । हणवा बुद्धि करी हण्यां सोहो रे ॥ थावो ॥ ३ ॥ आल झूठा किण जीव रै । दिया हुवै किण वारो रे । छानी वात प्रकाश नें । कियो हुवै किणरो विगारो रे ॥ थावो ॥ ४ ॥ मृषा उपदेश दिया वलि । लेख कूडा लिख्या ताह्यो रे ॥ राज पंचा मुख आगलै । झूटी साख भरायो रे ॥ थावो ॥ ५ ॥ थांपण मूषा ज्यो किया । इत्यादि मृषा वायो रे ॥ हांसि कोतुहल थी कदा । फुन लोभ तणैं वस आयो रे ॥ थावो ॥ ६ ॥ चोर तणीं परै चोरियां । तालो तोड वदीतो ॥ परकूंचियादि कारणैं । चोर सुं करि हुवै प्रीतो ॥ थावो ॥ ७ ॥ वस्तु चोरी नीं लेई हुवै । वलि साझ दियां किणवारो रे ॥ अदल वदल कपटैं करी ॥ कियो राज विरुद्ध व्यापारो रे ॥ थावो ॥ ८ ॥ चोखी वस्तु दिखाय नैं । वस्तु निक्कमी आपी रे ॥ लोभ तणैं वस आयनैं । खोटा नांप-णां नांपी रे ॥ था ॥ ९ ॥ देव मनुष्य तिर्यंच थी । देवाङ्गना सङ्ग होई रे ॥ परस्त्री अनें तिर्यंचणीं । मांठी नजरां जोई रे ॥ ॥ थावो ॥ १० ॥ काल थोडानीं राखी थकी । कुशील सेयो

रक्त होईरे ॥ हस्तकर्म्मादिक जोगसूं । पाप लागो हुवै कोईरे ॥ धावो ॥ ११ ॥ अपरिग्रही वेश्यां आदिसु । मिथुनादिक अभिलाखीरे ॥ तीव्र परिणामैं सेवियां । चक्षु कुशीलें झांकीरे ॥ ॥ धावो ॥ १२ ॥ केला अनेक प्रकारसूं । स्त्रियादिकसूं भाखीरे । नांता जुडाया परतणां । परनैं हर्षधरी परणावीरे ॥ धावो ॥ ॥ १३ ॥ खेतु वथु हिरण्य सुवर्णनें । धन धानादिक म्हांयेरे कुम्भीधातु द्वि चोपद घणां । मर्याद उपरान्त बधायोरे । धावो ॥ १४ ॥ ढाल भलीये तीसरी ॥ कहि धुर द्वार मझारोरे ॥ आगे विस्तार छ वलि घणूं । सांभलतां सुखकारोरे ॥ व्रतालोपण मैं करूं ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

गुणव्रत छै त्रण म्हांयरै । यथा शक्ति प्रमाण ।
दोषलागा हुवैतहमैं । आलवणां तसु जांण ॥ १ ॥
चिहुं दिशा चोटी सर्वा । आदरिया गुरुपास ।
दूषण लागयो जिण समैं । आलवणा करूंतास ॥ २ ॥
तम्बोलीनां पान जिम । बारम्बार संभाल ॥
करतां श्रावक ऊजला । प्रगट थाय गुणमाल ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

[illegible] । [illegible] ऊठीरे । एदेशी । [illegible] । [illegible] पाप कीनोंरे ॥ ऊंची नीची [illegible] ॥ [illegible] पिछाणि [illegible] ॥ १ ॥ [illegible] । आथा

पाछो पचदीधोरे ॥ विनराख्यो सूपी तणों । आहार कीयो पाणीं पीधोरे ॥ २ ॥ सचित अचित द्रव भोगव्या । वलि गहणां वस्त्र सवायारे ॥ यक अनेक वेलां कोई । अधिको भोगमैं आयोरे ॥ ल ॥ ३ ॥ पंदर कर्म्मादान सेविया वलि अनेरा पासोरे । मन वचन कायाकरी । अनुमोद्या हूवै जासोरे ॥ ल ॥ ४ ॥ कथा करी कंद्रप्पनीं । भांड कुचेष्टा कीधीरे । विन अर्थे पापारंभ किया । शस्त्र तीखा करया सीधीरे ॥ ५ ॥ सामायकमैं किण समें । हांसि कोतुहल अथायोरे । विनजोयां विन पूंजीयां । तनचंचलतां सवायो रे ॥ ले ॥ ६ ॥ आयां विना पारी हूवै । भापासात्र-भ बोलीरे ॥ संसारिक कारज मझ । मननीं लगाइ ओलीरे ॥ ले ॥ ७ ॥ सामायक मर्याद थी । ओछी करी हूवै त्हायोरे ॥ देव गुरु धर्म तीननां । अविनयामैं चितल्यायोरे ॥ ले ॥ ८ ॥ देशावगासी जे व्रतछै । ते नहीं सेयो भेवायोरे वस्तु आंमी सांमी वारलीं । आपो पुद्गल शब्दैं जणायोरे ॥ ल ॥ ९ ॥ पोषध करतां किणसैं । सेया सावद्य कामोरे ॥ दिन जोयां विन पूंजीयां । फिरिया आमांनें सामांरे ले ॥ १० ॥ आचार पास अनें भूमिका । उपग्रण सेझा संथारोरे ॥ सुपडि लेहणा न कीधी हूवै । निन्दा विकथा थी प्यारोरे ले ॥ ११ ॥ शुद्ध साधु निग्रंथनें । अप्रिय वचन जे भाख्योरे ॥ हेला निन्दा करि तेहनीं । आल अछतो दाख्योरे ॥ ले ॥ १२ ॥ चोदह प्रकार नूं दानजो । असूझता दिक दीधोरे ॥ स्व पर वस किणभ-वमें । साधुरैं काजकीधोरे ॥ ले ॥ १३ ॥ मेल साधु वस्तु सचितप । वलि सचितथी ढावयोरे ॥ अणागमतो आहार साधु नें । मांडाणी करि नांख्योरे ॥ ल ॥ १४ ॥ भांगो वैठ मुनि राजनीं । भावना नहीं भाईरे । दान आलश थी नाहिं दियो

शुद्ध मिलयां जोगवाईरे ॥ ले ॥ १५ ॥ ये द्वादश व्रतां तणीं ॥ आलोवणा करी सीधीरे ॥ जिन सिद्ध साधु साखथी ॥ आतम निरमल कीधीरे ॥ ले ॥ १६ ॥ तप आचार द्वादश विषै । अभिग्रह त्याग अनेकोरे ॥ तसु अनाचार सेव्यो हुवै । वलवीर्य गोप्यो विशेकोरे ॥ ले ॥ १७ ॥ चौथी ढाल कहि भली । कह्यो पहलो चे द्वारोरे ॥ कहतां सुणतां सुखलहै । आनन्द हर्ष अपारोरे ॥ प्रथम द्वार इम जाणज्यो ॥ १८ ॥ इति प्रथम द्वार

॥ कलस ॥

इम प्रथम द्वार सुधार आतम व्रत आलवणा जे कही ॥ इणरीत जे श्रावक शुद्धातम, कियां आराधक सही ॥ लाग्यो हुवै कोई दोष तेहनुं, गुरु मुख प्रायश्चित लही ॥ तप अग्नि सूं कर्म काष्ट जाली, पालिये व्रत ऊमही ॥ १ ॥

॥ अथ दूसरो सम्यक व्रतारोपणाद्वार ॥

॥ दोहा ॥

महतपी ग्रहस्थाश्रमें । अनेक पाप उत्पन्न ।
आरंभ परिग्रह सर्वथा । तजस्यूं ते दिन धन्न ॥ १ ॥
पूर्वे सुगुरु समीप में । समकित व्रत लिया तेह ।
ते हरदो फल उपर्न । सिद्ध साधु साखेह ॥ २ ॥

॥ ढाल अरिहन्त मोहकाये ॥

ए ॥ १ ॥ ते कर्मरूप अरिजण हण्यां ए । रोक्या छै पापनां द्वारकै ॥ रागद्वेष क्षय किया ए । निजगुन प्रगट उदारकै ॥ ॥ स ॥ २ ॥ लोकालोकनीं वस्तुनां ए । जांण रह्या सब भाव कै । जिन नांम कर्मथीं ए ॥ अतिशय अधिक अथायकै । गावूं गुन जेहनां ए ॥ ३ ॥ नरसुर इन्द्रादिक बहू ए । नरपति सारै सेवकै ॥ कहूं गुन किहां लगै ए । मोटा प्रभू देवापति देवकै ॥ ॥ गा ॥ ४ ॥ चौतीश अतिशय ओपता ए । पैंतीस वांणीं वदीतकै ॥ द्वादश गुन भला ए । अष्टादश दोष रहितकै ॥गा॥ ॥ ५ ॥ शुद्ध साधु गुरु म्हांयरै ए । पंच समिति हुसियारकै ॥ महाव्रत पंच पालता ए । तीन गुप्ति धरण्यारकै ॥ यहवा गुरु म्हांयरै ए ॥ ६ ॥ च्यार कषाय निवारनैं ए । पालैछै तेरा बोलकै ॥ परिसह सहनमें ए । सुर गिर जेम अडोलकै ॥यहवा॥ ॥ ७ ॥ सतरे विध संजम धरा ए । असंजम सतरे टारकै ॥ बावन अणाचार तजै ए । दोष बयांली परिहारकै ॥ यहवा गुरु म्हांयरै ए ॥ ८ ॥ धर्म जिनेश्वर भाषियो ए । अहिन्सा सुखकारकै ॥ वलि जिन आंणमें ए । न होवै पाप लिगारकै॥ धर्म शुद्ध आदरूं ए ॥ ९ ॥ वलि दुरगति पड़तां जीवनें ए । धारी राखै ते धर्मकै ॥ साधु श्रावकनु भलो ए । पाल्यां शिव सुख परमकै ॥ धर्म ॥ १० ॥ व्रतमें धर्म जाणुं खरो ए । अव्रत अनर्थ मूलकै ॥ दया अनुकम्पा भलो ए । धर्म थी छै अनुकूल कै ॥ ११ ॥ करुणा मोह स्नेहनीं ए । कियां पाप सुजाणकै ॥ अव्रत सेवावियो ए । अधर्म कह्यो जगभांणकै ॥ धर्म ॥ १२ ॥ कुगुरु कुदेव कुधर्मनें ए । वोसराऊं इणवारकै ॥ यथाशक्ति आदरूं ए । व्रत पचखांण उदारकै ॥ धर्म ॥ १३ ॥ पहिलो व्रत त्रस जीवनें ए । आकूटी नें जांणकै ॥ हणवा बुद्धि करी

ए। मारण मरावण पचखाणकै ॥ व्रत इम आदरूं ए ॥१४॥ राज दंड लोक भांडवै ए। इसो मोटो झूंट परिहारकै ॥ दूजो व्रत जांणिये ए। करण जोग सुविचारकै ॥ व्रत ॥ १५ ॥ तालो तोडि परकुञ्जीसुं ए। परधन चोरण नेमकै ॥ करण जोगें करी ए। तीजोव्रत करै येमकै ॥ व्रत ॥ १६ ॥ देव देवी तिर्यंचणी ए। परस्त्री वेश्यां आदिकै ॥ मनुष्य मनुष्यणी ए। चौथो मिथुन मर्यादकै ॥ व्रत ॥ १७ ॥ पंचमें परिग्रहानूं करूं ए। यथा सक्ति प्रमाणकै। नव विध जे कह्या ए॥ धन धानादिक जांणकै ॥ व्रत ॥ १८ ॥ ऊंची नींची तिरछी दिशाए। जाव-ण राखी जेहकै ॥ उपरान्त जायनें ए। पंच आश्रव पचखेहकै ॥ व्रत ॥ १९ ॥ उपभोगनें परिभोगमें ए। आवै छै छव्बीस बोलकै ॥ त्याग किया तिके ए। सातमुं व्रत अमोलकै ॥व्रत॥ ॥ २० ॥ आठमें अनर्थ दंडनां ए। त्याग करै जावज्जीवकै ॥ च्यार प्रकारनां ए। कह्या पाप अतीवकै ॥ व्रत ॥ २१ ॥ सामाइक नवमें दर्से ए। दशमें संवर जांनकै ॥ पोसो व्रत इग्या-रमुं ए। बारमुं साधांनें दे दानकै ॥ व्रत ॥ २२ ॥ ढाल भली ये पांचमीं ए। आख्यो छै दूजो द्वारकै ॥ श्रावक शुभ भावसूं ए। आराधे धर प्यारकै ॥ व्रत ॥ २३ ॥

॥ कलस ॥

॥ अथ तीजो खमावन द्वार ॥

॥ दोहा ॥

व्रतधारक भवि शुद्धमन । खमत खामनां सार ॥ निरमल आतम किमकरै । आखूं ते अधिकार ॥ १ ॥ सरल पणें वच कायसूं । मनथी कपट निवार । नमन भाव दिल आणिनें ॥ खमाविये तजखार ॥ २ ॥

॥ ढाल छट्ठी ॥

संभव साहिब समरिये ॥ एदेशी ॥

सात लाख योनि महीधरा ॥ सातलाख अप्पपांणीनी जोणिके । सातलाख तेऊ अग्निनी । । वायू पिण इतनीं कहीगोणिकै । खमत खामनां तेहथी ॥ १ ॥ येक जीव इक तनु महीं । तेह प्रत्येक वनस्पति कायकै ॥ दशलख योनी जिन कही । चौदः लख साधारण तायकै ॥ खमत ॥ २ ॥ जीव अनन्ता येकसा । येक शरीरमें रह्या तिण न्यायकै ॥ लीलण फूलण आदिमें । जमींकंद अंकूरा मांयकै ॥ खमत ॥ ३ ॥ सूक्ष्म बादर बिहुं परै । क्रोध भाव आणया हुवै कोयकै ॥ त्रिविध ३ म्हांयरै । मिच्छामि दुक्कडं छे अवलोयकै ॥खमत॥ ॥ ४ ॥ बादर पांचूं कायनें । हणी हणाई निजपर काजकै ॥ अनुमोदी हणतां प्रते । ते तिहुं जोग आलोवूं आजकै ।खमत। ॥ ५ ॥ लट गिंनोला बेंद्री । कीडादिक तेंद्री नां जीवकै ॥ खटमल प्रमुख विणासिया । कलुष भाव करि पाडी रीवकै ॥

॥ खमत ॥ ६ ॥ मांखी मांछर चौरिन्द्री । विच्छु प्रमुख हणया हुवे सोयकै ॥ ये तिहूं वेकेन्द्री तणीं । योनी लख जाणों दोय दोयकै ॥ खमत ॥ ७ ॥ रत्नप्रभाः जाव तमतमा । सात नरक में नेरीया जेहकै ॥ च्यार लाख योनि तेहनीं । तास खमावूं शल्य परोहकै ॥ खमत ॥ ८ ॥ च्यार प्रकार देवता । भुवन पती व्यन्तर सुविचारकै ॥ योतषी अने विमानका । चिहूं लख योनि गणों अधिकारकै ॥ खमत ॥ ९ ॥ द्वेष भाव किया भव शेर । आरया हुवे वलि कलुष परिणामकै । तास खमावूं भली पर ॥ खमज्यो तुम्ह देवा अभिरामकै ॥ खमत ॥ १० ॥ तुर्य लाख तिर्यंचनीं । जलचरमें मच्छादिक जांणकै ॥ थलचर पल्प चालता । हाती अस्वादिक वहु प्रांणकै ॥ खमत ॥११॥ उरपर उर सें गति करै । शर्पादिक वलि विवध प्रकारकै ॥ भुजपर इन्दर आदि हैं । तासु खमावूं तज चित खारकै ।खमत। ॥ १२ ॥ गमन आकाश करै ततु । खचर पंखी कहिजे जासकै। [illegible] कौतूहल दिक करी । हणया हणाया हुवे वलि तासकै ॥ ॥ खमत ॥ १३ ॥ पांच भेद तिर्यंच ये । मन विमना इन्द्रिय धर [illegible] ॥ सर्व प्रते तीन जोग सूं । खमत खामना करूं तज [illegible] ॥ खमत ॥ १४ ॥ चौंदह लख योनि मनुष्यनीं । सूत्र [illegible] भाखी जिननायकै ॥ ततु मल मूत्रादिक मही । छमृर्छम [illegible] ॥ खमत ॥ १५ ॥ ये चोरासी लख जाणीये। [illegible] उपजण ठामकै ॥ वारम्वार ते सव प्रते । ख- [illegible] अभिरामकै ॥ खमत ॥ १६ ॥ देव अरिहन्त जे [illegible] । [illegible] हूं [illegible] ॥ इम हिज [illegible] [illegible] हिज पद [illegible] ॥ खमत ॥ १७ ॥ विनय

करी कर जोडनें । मन शुद्ध थी खमाज्यो अपराधकै ॥ भव भव शरणों तुम तणों । तिणसुं थावै परम समाधिकै ॥ खमत ॥ ॥ १८ ॥ दूजेपद सिद्ध सुख कन्द । पूर्व प्रयोगे गति परिणामकै ॥ सर्वारथ सिद्ध थी अछे । द्वादश योजन ईसी प्रभा: नामकै ॥ खमत ॥ १६ ॥ ते थी ऊर्द्ध लोकान्तकै । गाऊ इकरै छट्टे भागकै ॥ अनन्त गुणी तुम्हें जयी वस्या । हिव पायो में तुम तणों मागकै ॥ खमत ॥ २० ॥ जे कोई जांण अजाणतां । आशातनां हुई तासु खमायकै ॥ आंवण तिहां मन लग रह्यो । तुम सरिषो तुम जापियां थायकै ॥ खमत ॥ २१ ॥ आचारज तीजे पदै । सम्यकत चर्ण तणां दातारकै ॥ शुद्ध प्ररूपणा जहनीं । महा उपगारी महा सुखकारकै ॥खमत॥२२॥ उवभ्काया गण वत्सलू । भणें भणावै निरमल ज्ञानकै ॥ गणी आणां न उलंघता । पालै पंच महाव्रत मानकै ॥खमत॥२३॥ दाता समकित चर्णारा । देश ब्रत पालू तुम जोगकै ॥ जे कोई जांण अजाणतां । आशातना हुई विन उपयोगकै ॥खमत॥२४॥ शुद्ध साधु अढी द्वीपमें । पंचयाम नव कल्प विहारकै ॥ निरलोभी निर लालची । जाचै दोष बयांली टारकै ॥खमत॥२५॥ भिक्षुगणमें महा मुनी । साध्वियां सहु गुण भंडारकै ॥ अप्रिय बच तसु द्रप थकी । कियो अविनय खमाऊं सारकै ॥ खमत ॥ ॥ २६ ॥ गुण विहुणा गण वाहिरा । टालो कर वलि भ्रष्टचारकै ॥ तासु खमावूं भली परै । किण अवशर कियो कलुष विचारकै ॥ खमत ॥ २७ ॥ मात पिता सुतनें धुया । वनितसु अंगज थी किण कालकै ॥ वान्धव न्याती गोती सें । मित्र अमित्र सहु समभालकै ॥ खमत ॥ २८ ॥ नोकर चाकर दास थी

दामीनें वलि तसु अंग जातके ॥ जो कोई जांण अजांणतां । स्व पर वस वच कटु आख्यातके ॥ खमत ॥ २६ ॥ क्रोध मान माया करी । लोभथकी दिया अछता आलकै ॥ सहु संसारी जीवसें । खमत्त खामना अधिक रसालके ॥खमत॥ ३०॥ निज स्त्री पुत्र पुत्रीनें । हित शिक्षा देतां किण वारकै ॥ करडा वचन कह्या हुवै । कारज धरनां करावण सारकै ॥खमत॥ ॥ ३१ ॥ नाम लेईनें जुआ जुआ । सर्व भणीं इम खमत खमायेकै ॥ मन वच काया इं करी । दिलमें मच्छर भाव मिटायकै ॥ खमत ॥ ३२ ॥ धर्म जिनेश्वर भाषियो । पायो इण भवमें शुविसालके ॥ विघन मिटै संकट कटै । तास प्रशादे मंगल मालकै ॥ खमत खामना इम करै ॥ ३३ ॥ तीजे द्वार आराधना । खमाविये कही छट्ठी ढालके ॥ आराधक पद पाविये । जिन वच रहामां नयण निहालके। खमत खामना इम करै ।३४। इति।

॥ कलश ॥

इम खमत खामन आदि पावन, विमल भावन नित धरे ।
बहु भव खपाय तुरंत सुखाय, आतम हित चित सुख करै ॥
श्री जिनेश्वर महाराज भव दधि, पाज काज सेयां सरै ।
[illegible] श्रावक गुनाढ तु भाव गुण युत भनही आनन्द निजघरै १

॥ अथ चतुर्थ द्वारम् ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] डाहिया, [illegible] के पार ।
[illegible] निराग दिया जिन दाय ॥१॥

॥ ढाल ॥

इण अवसर धनजी आवै तथा सेव मुनी नीं कीजे । सेवा-थी वंछत सीझैजी ॥ एदेशी ॥

मतकर तूं श्रावक पापं । जिन धर्ममें थिर चित थापंजी ॥ ॥ म ॥ १ ॥ पहलो अघ प्राणातिपातं । दूजो अघ मृपा वा-तंजी ॥ म ॥ २ ॥ तीजो अघ अदत्ता दानं । चोथो अघ मिथुन सुजानंजी ॥ म ॥ ३ ॥ पंचम अघ जे धन धानं । छट्टो अघ क्रोध वखानंजी ॥ म ॥ ४ ॥ सातमूं अघ छै अभिमानं । अष्टम माया कपट तोफानंजी ॥ म ॥ ५ ॥ नवमूं लोभ निवारो । दशम राग परिहारोजी ॥ म ॥ ६ ॥ इग्यारमुं द्वेष न धरियो । बारमुं कलह न करिवोजी ॥ म ॥ ७ ॥ अबाख्यान न दीजे । पर परिवाद न कीजजी ॥ म ॥ ८ ॥ संजमथी अराति ल्यावै । असंजम रति मन भावैजी ॥ म ॥ ९ ॥ ये पाप सोलमूं ठाडो । रति अराति दोनूं छांडोजी ॥म॥१०॥ कपट सहित झूंठ बोलै । सतरमुं माया मृपा ओलैजी ॥ म ॥ ११ ॥ अठारमूं अघ अति भारी । मिथ्या दरशन सल्य विचारीजी ॥ म ॥ १२ ॥ ये पाप अठारा जाणीं । त्यानें परहरै उत्तम प्राणीजी ॥ म ॥ १३ ॥ छांडणारी मनसा राखै । ते शिव सुख जलदी चाखैजी ॥ म ॥ ॥ १४ ॥ चोथे द्वार इम भावे । अंत समें पाप वोसरावैजी ॥ ॥ म ॥ १५ ॥

॥ कलश ॥

चोथे द्वार अराधना कह्यो । पापनें वोसरायवो ॥ किया पाप अति दुःख परभवे । इम जीवनें समझायवो ॥ धन संत

तत महंत नींका । पापनीं रजदालता ॥ निज आतम सम पर प्राणि जाणीं । पंच महाव्रत पालता ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ पंचमूं शरण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

पंचम द्वारे धारवा, मनमें शरणां च्यार ।
अरिहंत सिद्ध साहु वलि, जिन भापित धर्म सार ॥१॥
शरणां थी सुख संपजे, दुःख दारिद्र पुलाय ।
विघ्न मिटे संकट कटे, मन वान्छित मिलजाय ॥२॥

॥ ढाल ॥

प्रभू वासु पुज्य भजले प्राणीं ॥ एदेशी ॥

प्रथम शरण अरिहन्त देवा । त्यांरी सुरनर सहु सारे से-वा ॥ शरण कमलनी बलिहारी । मुझ शरण अरिहंत तणूं भारी ॥ १ ॥ जे कर्म रूप वैरी मारया । ताहि केवल भविजन ने तारया । है च्यार तीरथनां कारतारी ॥ मु ॥ २ ॥ फिटक सिंहासन पे वैसी । साधु श्रावक धर्मनां उपदेशी । अहिन्सा [illegible] ॥ मु ॥ ३ ॥ तरु अशोक थलो स्होवे । अ-तिशय [illegible] । भामंडलनी छबि भारी ॥ मु ॥ ४ ॥ [illegible] । पुष्प वृष्टी सुगंधित अनुकारं । सुर [illegible] ॥ मु ॥ ५ ॥ अनन्त ज्ञान दरशन धारं । [illegible] । [illegible] सुन पे हितकारी ॥ मु ॥ [illegible] दूर किया । राग द्वेष अरि मति जीत

लिया । वीत राग प्रभू गुणधारी ॥ मु ॥ ७ ॥ आठ महा प्रतिहारज छाजै । वांणी गुण पणतीश करी गाजे । चौतीस अतिशय सुविचारी ॥ मु ॥ ८ ॥ त्रिगड़ा विच प्रभूजी सोहवै । चिहुं मुख चिहुं दिशमें मन म्होवै । समोवसरण रचनां भारी ॥ ॥ मु ॥ ६ ॥ जे अष्ट कर्म नूं नांश करी । येक समय मांहि शिव रमण वरी । थया सिद्ध निरंजन अविकारी ॥ मु ॥ १० ॥ अजोगी अभोगी अविनासी । अनन्त आतमिक सुख सुविलासी ॥ जिके आवागमन दियो टारी । मुझ सरणों सिद्ध तणों भारी ॥ ११ ॥ निवड कठिन जे कर्म दही । वलि ज्ञान कृया करि मुक्ति लही । अठ गुण अतिशय येकतीस सारी ॥ मु ॥ ॥ १२ ॥ तीन काल तणां सुर सुख लहिये । तसु अनन्त वारंगणा फुन दईये । तेहथी अनन्त गुणों सुख हैं सारी ॥मु॥ ॥ १३ ॥ तीजो शरणों मन भावो । साधू साध्वियानों मुझ थावो ॥ पंच सुमति महा व्रतधारी । मुझ शरणों साधां तणों भारी ॥ १४ ॥ वयांलीस दोष तज आहार लेवै । हित शिक्षा भविजन नें देवै । पालै संजम सतरै प्रकारी ॥ मु ॥१५॥ मांडलानां पांच दोष टालै । तिके राव रंक सहु सम भालै । विषय इन्द्रियां नां परिहारी ॥ मु ॥ १६ ॥ दुष्ट अस्व मन जीत लियो । वलि कंद्रप मनथी दूर कियो । आप तरे पर नें तारी ॥ मु ॥ १७ ॥ निन्दा प्रशंसा में सम भावै । राग द्वेष किणही पर नहिं ल्यावै ॥ भोग तजी थया ब्रह्मचारी ॥ मु ॥ १८ ॥ दुःख नरक निगोद थकी डरता । तजी स्नेह नव कल्प विहार करता । ते सुविनीत गुरू आज्ञा कारी ॥ मु ॥ १६ ॥ केवल ज्ञानी जे धर्म कह्यो । तेही संवर निरजरा मांहि रह्यो ॥ कर्म कटै नें रुकै सारी । मुझ शरणों धर्म तणों भारी ॥ २० ॥

जिन आज्ञा मांहि धर्म अखे । जिके दुरगति पडतां नें धारि रखे । व्रत धर्म अव्रत दुःख कारी ॥ मु ॥ २१ ॥ दान सुपात्र सुख प्रगटे । पाल्यां संजम तपथी पाप कटे । भव भ्रमण मिटै वरे शिव नारी ॥ मु ॥२२॥ इम च्यार शरणां जे नित ध्यावै । रोग सोग विघन नहिं पावै । ये ढाल आठमी जयकारी ॥ ॥ मु ॥ २३ ॥

॥ कलश ॥

जयकार च्यार उदार शरणां, विघनहरणा ये कह्या । सुख कार पर उपगारि श्रावक तणें मनमें वस रह्या ॥ अघटार खार निवार भवि तूं धार चिहुं विध शरणकों । संसार गार असार पारावार भवदधि तरणकों ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ छट्ठो दुकृत निन्दा द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दुकृतनीं निन्दा करै, छट्ठा द्वार विषेह ।
दुःकर्म किया कराविया, ते सहु याद करेह ॥ १ ॥
इणि प्रकार इण जीवनें, राग द्वेष वश आंण ।
लोभ वशें अनर्थ किया, निन्दा तेहनीं जांण ॥ २ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

सीता आंहरे घर राग॥ एदेशी ॥

भव भव भमियो निज गुण गमियो, रमियो मिथ्या मांहि । [illegible] न [illegible] मन नाहिं दमियो । मन वच निन्दूं ताहि । दुकृत

निन्दूं धरि अहलाद ॥ १ ॥ खोटा देव खोटा गुरु सेव्या । वालि धार्यो कूधर्म । वार्भा अडम्बर देखी तेहनुं नमियो शर्माशर्म ॥ ॥ दुःकृत ॥ २ ॥ अन्य तीर्थ कृत शास्त्र वांचिया श्रद्धा विरुद्ध विचार । अशुद्ध प्ररुपन करी कुसंगे । ते निन्दूं धर प्यार ॥ दुकृत ॥ ३ ॥ हिन्सा मांहीं धर्म जाणियो । नागिण्यों दोष लिगार ॥ आगल अछरी संगत खेती आरंभ किया अपार ॥ दुकृत ॥ ४ ॥ शुद्ध साधु नां गण थी वाहर । निकलिया जे तास ॥ धर्म जाण अशणां विकशीधो ॥ वलि नमस्कार कियो जास ॥दुकृत॥ ५ ॥ दान कुपात्रां नैं धर्म जाणीं । दियो हुवै जे कोय ॥ इच्छा असंजम जीतवनीं । थावो मिच्छामि दुक्कडंमोय ॥ दुकृत ॥६॥ स्नेहराग अनुकंपाकरि के । जिन धर्म जाणयो होय ॥ अव्रत सेतां अनें सेवातां । श्रध्यो धर्म सु सोय ॥ दुकृत ॥ ७ ॥ वीतरागनूं निस्नेही मारग । ढांक्यो हुवै किणवार ॥ कुमारगनें प्रगट जकीधो । ते निन्दूं धरप्यार ॥ दुःकृत ॥ ८ ॥ इंगालिक कम्मादिक पंदरा । सेव्या कम्मादान ॥ निज पर अर्थे कुकारज कीधा । लीधा अदत्ता दान ॥ दुकृत ॥ ९ ॥ आलस करी उघाडा राख्या । घृत आदि रशनां ठाम ॥ धाणीं प्रमुख में जंतु पीलाव्या । किया निन्दनींक जे कांम ॥ दुकृत ॥ १० ॥ खान खुदाई भूमि फडाई । ढोल्या अणगल नीर ॥ यंत्र घटी ऊपल मूशल दिक । करतां नहिं जाणीं पर पीर ॥ दुकृत ॥ ११ ॥ महा आरंभ कारि जीव विराध्या । वोल्या मृषावाद ॥ पर दाह दीधी चोरी कीधी । सेव्या मिथुन उनमाद ॥ दुकृत ॥ १२ ॥ परिग्रहा मांहि लिप्त रह्यो चित । कीधो क्रोध विशेख ॥ मान मायानें लोभथकी में । किया रागनें द्वेख ॥ दुकृत ॥ १३ ॥ दुष्ट परिणामां त्रशजीवांनें । पांणी मांहि डवोय ॥ हांसि को-

तुहल करि मन हरख्यो । राख्या थापण मोसा सोय ॥ दुकृत ॥ १४ कसाई प्रमुखरा भव में मारया । त्रस प्राणी दिन रात ॥ भाडै चलाव्या सगट ऊंटादिक । लालच थी करी घात ॥ दुकृत ॥ १५ ॥न्यायालय में हाकम होके । किया अधिक अन्याय ॥ पक्षपात धर करि पंचायत । कूडी साख भराय ॥दुकृत॥ ॥ १६ ॥ हाव पकाव्या कुंभारनें भव । तेली भव में तेल ॥ माली भव में वृक्ष विणास्या । रांगण भव रेलापेल ॥ दुकृत ॥ ॥ १७ ॥ हिन्सक जीव सिंह मृगादिक । खेली तास सिकार ॥ मद्य मांसनां भक्षण कीधा । पिया गांजा सुलफा धार ॥ दुकृत ॥ १८ ॥ विनजोयां विनपूंज्यां ईंधण । बाल्या चूल्हा मांहि ॥ लट गिनोला घुंण इत्यादिक । विराधिया हुवै ताहि ॥ दुकृत ॥ १९ ॥ परदाह दीधी कलह लगाव्या । घातकरी विश्वास ॥ गर्भ गलाव्या मंत्रपढाव्या । वसीकरणादिक जास ॥दुकृत॥२०॥ गुणवंतानां गुण नहीं गणियां । दिया अछता आल । संत सतियांरी निन्दा कीधी । मच्छर भावैं भाल ॥ दुकृत ॥ २१ ॥ पंच आश्रव सेव्या सेवाया । तिमहिज पाप अठार ॥ इणभव परभव दुकृत कीधा । पारो त्रिविध २ धिक्कार ॥दुकृत॥ २२ ॥ इणपरि दुकृत आरज तेहनी । निन्दा छहै द्वार ॥ हलु कम्मीं निन्दे दुकृत । पावे सुख अपार । दुकृत निन्दे धरि अहलाद ॥ २३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

[illegible] तिन सुख [illegible] । सुख [illegible] थी पामिये ॥ [illegible] दुर्लभ [illegible] । [illegible] महुणाणीये । जे किया

सावद्य कार्य्य तहनी निन्दनां करिये वली। शुभकार्य्य भलभावें आचरिये। जेमथावैरंगरली ॥ ० ॥

॥ इति षष्टम् द्वार ॥

॥ अथ सप्तम् सुकृत अनुमोदनाद्वार ॥

॥ दोहा ॥

तप उपवासादिकक्रिया। व्रत संवर सुखकार।
सुकृतनीं अनुमोदनां । सप्तम द्वार मझार ॥ १ ॥
जिनमार्ग शुद्ध निर्मलो। समकित चर्ण उदार ।
ज्ञान दरशन चारित्र तप। ते अनुमोदूं सार ॥ २ ॥

॥ ढाल दशमी ॥

नींदडली हो नाह निवारिये ॥ एदेशी ॥

श्री तीरथ पति इम उपादिस्यो। मत हणज्यो हो छक्काय नां जीयकै ॥ अनेरा पास म हणाबज्यो। अनुमोद्यां हो लागे पाप अतीवकै ॥ करो जिन धर्मनीं अनुमोदनां ॥ १ ॥ भोजन विविध प्रकारनां। आरंभ कियां हो निपजै छै तायकै ॥ छहुं कायांरी हिन्सा हुवै। ते भोगवियां हो किञ्चित धर्म न थाय कै॥ करो ॥ २ ॥ जो खाणां पीणां में धर्म हुवै। तो श्रावक ति-णोंनें हो सार्ग्या पाप पंडूरकै ॥ वालि दूजानें साग करावियां। अनुमोद्यां हो लागे अघ भरपूरकै ॥ करो ॥ ३ ॥ सर्व व्रती साधू भला। ते टाली हो बाकी संसारी जीवकै। सांरो खाणों

पीणों वलि पहरणों । सब अव्रत में हो जाणों दुरगति नींवकै ॥ करो ॥ ४ ॥ सावद्य खोटा जाणिनें । मुनी त्याग्या हो काम भोगादि सोयकै ॥ ते सावद्य ग्रहस्थ कियां । तिण मांहिं हो धर्म पुन्य किम होयकै ॥ करो ॥ ५ ॥ हमाहिज मृषा बोलियां चोरास्यां हो अनुमोद्यां येककै ॥ अदत्त मैथुन सेवियां । स- वारयां हो थावै व्रत में छेक कै ॥ करो ॥ ६ ॥ वलि पंचमूं आ- श्रव परिग्रहो । ते राख्यां हो पाप लागै छै सोयकै ॥ ते दूजा नें दियां दवावियां । भलो जाण्यां हो मत जाणों धर्म कोयक ॥ करो ॥ ७ ॥ ये पांचूं त्याग्या में धर्म छै । ता सेवतां हो अशुभ कर्म बंधायकै ॥ अनेरां नें सेवायां अनुमोदियां । तीनूं करणां हो येक सरिषा थाय कै ॥ करो ॥ ८ ॥ दशमां अङ्ग में जिनकह्यो । आश्रव छांड्यां हो श्री जिनजीरा धर्म कै ॥ व्रत अव्रत जे ओलख्यो । तेही जाणें हो इण बातरो मर्मकै ॥ करो ॥ ९ ॥ कोई साता दियां साता हुवै ॥ ते नहिं जाणी हो श्री जिन धर्म नीं बात कै ॥ जे धर्म अधर्म न ओलख्यो । त्यांरै [illegible] में हो [illegible] घोर मिथ्यातकै ॥ करो ॥ १० ॥ श्री सु- [illegible] अङ्ग सूत्र में । तिण नें मूरख हो भाष्यो श्री जिनराज कै । [illegible] मार्ग रूं [illegible] कह्यो । इम इत्यादिक हो पट बाल [illegible] कै ॥ करो ॥ ११ ॥ अशुद्ध प्ररूपणा छांडनें । शुद्ध [illegible] हो जिन आज्ञा में धर्म कै ॥ नरखों वंछ्यो सपर तणुं [illegible] हो पावै शिव सुख पर्म कै ॥ करो ॥ १२ ॥ ये [illegible] । [illegible] पेहो [illegible]-[illegible] ॥ [illegible] । [illegible] हो अनुमोदुं ने [illegible] ॥ करो ॥ १३ ॥ [illegible] आयुष्या । [illegible] [illegible] ॥ [illegible] मेवा करी ।

अनुमोदूं हो विनय करि नमस्कार कै ॥ करो ॥ १४ ॥ सामाईक पोसा किया । छहूं आवश्यक हो किया कालों काल कै ॥ उद्यम कियो जिन धर्म में । अनुमोदूं हो पाल्या व्रत रसालकै॥ करो ॥ १५ ॥ निरदोष दान सुपात्रनें । दियो देवायो हो भलो जाण्यों जेहकै । तेहनीं करूं अनुमोदनां । अलगी थावै हो कर्म रज खेह कै ॥ करो ॥ १६ ॥ दया अनुकम्पा जे करी । करावी हों भली जाणीं तासकै ॥ संजम जीवत वंछियो । मन बच काया हो अनुमोदूं जासकै ॥ करो ॥ १७ ॥ शुद्ध साधु निग्रन्थ सैं । मैं सुणियों हो वारूं सरस बखानकै ॥ सूत्र तणां बच सांभल्या । अर्थ धारया हो ते अनुमोदूं वान कै ॥ करो ॥ १८ ॥ दान शील तप भावना । मैं सेव्या हो सेवाया धरि चित्त कै ॥ समकित दृढ करि आसरया ॥ अनुमोदूं हो ते परम पवित्त कै ॥ करो ॥ १९ ॥ जिन शाशन अधिक दृढा वियो । वलि गाया हो गणिनां गुण ग्राम कै ॥ अत्यन्त हर्ष धरि ऊचरया । अंतस मनसूं हो अनुमोदूं तांम कै ॥ करो ॥ २० ॥ इत्यादिक सुकृत तणीं । अनुमोदन हो येह सप्तम द्वार कै ॥ श्रावक तन मनसें करै ॥ आनन्द थावै हो दशमीं ढाल विचार कै ॥ करो ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

आनन्द थावै दुःख जावै सुख पावै धर्म सूं । जे भविक भावै सुबुद्धि आवै द्रप मिटावै नर्मसूं ॥ इम जांण व्रत पचखांण कीजे दान दीजे पात्र नें । अव्रत तजी ज व्रत पालीज आराधीजे यात्र नें ॥ १ ॥

॥ इति सप्तम द्वार ॥

॥ अथ अष्टम भावना द्वार ॥

॥ दोहा ॥

अष्टम द्वार भावना । भावै श्रावक सार ।
अशुभ कर्म दूरा टलै । पावै सुख अपार ॥ १ ॥
तन धन जोबन कारमों । बादर जिम विलाय ।
देखो दिनकर तेहनीं । तीन अवस्था थाय ॥२॥
डाभ अणीं जल बिन्दुवो । जीतव जाणों तेम ।
तिणसुं उत्तम नर नारियां । राखो धर्म सें प्रेम ॥३॥

॥ ढाल इग्यारमीं ॥

अपांत जिनेश्वर प्रणमुं नित बेकर जोडिरे ॥ एदेशी ॥

तज विभाव निज भावमें । रमिये नर चतुर सुजाणरे ॥ निज आतम में गुण घणां । मत पर गुण में सुख जांणरे ॥ मत पर गुण में दुख जांण श्रावक गुण ग्राहिका । भावो भावना येम उदाररे ॥ १ ॥ अनन्त ज्ञान दरशन भला । वलि चारित वीर्य अपाररे ॥ येह निजगुण हैं थांहिरा । जरा अन्तर ज्ञान विचार रे ॥ जरा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २ ॥ निजगुण विन [illegible] कारमां । दिगसंता न लागै वाररे ॥ अथिर जोबन धन [illegible] । जिम वीजली नूं चिमत्काररे ॥ जिम ॥ श्रा ॥ ॥ भावो ॥ ३ ॥ ए तनु जे तें पामियो । ते खिण में भंगुर थायरे ॥ [illegible] बाहवां । इण संग क्यों रहो लोभायरे ॥ इण ॥ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ४ ॥ अशुभ कर्म थी आतमां । मैली होय [illegible] जायरे ॥ शुभ परिणाम सु लपायिनें । प्रगट करिये

गुण खाणरे ॥ प्रगट ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ५ ॥ मनुष जनम दुर-लभ लह्यो । आर्ज क्षेत्र पुन्य प्रमाणरे ॥ उत्तम कुल आय ऊपनूं । पायो आयु शुभ दीर्घ जाणरे ॥ पायो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ६ ॥ बल प्राक्रम इन्द्रियां तणों । मिलयो सतगुरु नों संयो-गरे ॥ तो पिण धर्म करै नहीं । एहवो मूर्ख मूढ अयोगरे ॥ एहवो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ७ ॥ पुत्र कलत्र परवार में । धन धान परिग्रह मांहिरे ॥ मूर्छित मोहनीं छाक में । म्हारो २ करि रह्यो ताहिरे ॥ म्हारो २ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ८ ॥ ये सहु स्वार्थनां सगा । मतलब विन न करै साररे ॥ वेदन वंटावै नहीं । पुत्रादिक जे परिवाररे ॥ पुत्रा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ६ ॥ पूर्वे जहवा बांधिया । तेहना उदय हुवै पुन्य पापरे । सुख दुःख उप-जै जीवनै । ते भोगवै आपों आपरे ॥ ते भोगवै ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १० ॥ वेदन उपजै शरीर में । तिण अवशर येम विचाररे ॥ वार अनन्ती भोगव्या । दुःख नरक निगोद मझाररे ॥ दुःख ॥ श्रा ॥ भावो ॥११॥ तेतीश सागर लगि सह्या । दुःख सा-तमी नरक अनन्तरे । तो येह मनुष्यनां भव तणां । राई सम-किंचित् हुन्तरे ॥ राई ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १२ ॥ जे मैं समकि-त विन कृया । पाली कष्ट सह्यो बहु बाररे ॥ आतम कार्य सरयो नहीं । समकित विन नहीं भव पाररे ॥ समकित ॥श्रा॥ भावो ॥ १३ ॥ हिव समकित ब्रत पामिया । पायो रतन चि-न्तामणि हातरे ॥ तो येह वेदन समपणें । सह्यां लाभ असंत विख्यातरे ॥ सह्यां ॥ श्रा ॥ भावो ॥१४॥ कष्ट खम्यां सम भाव सें । टूटै अशुभ कर्म अघ जालरे ॥ तप्त तवे जल बिन्दु ज्यों । भस्म हुवै कह्यो परम कृपालरे ॥ भस्म हुवै ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ॥ १५ ॥ सूको तृण पूलो आग्नि में । सिघ्र पणें दहै तिम कर्मरे॥

पंचमां अंग विषै कह्यो । इम जाणि किजे जिन धर्मरे ॥ इम ॥
॥ श्रा ॥ भावो ॥ १६ ॥ अल्पकाल दुःख सहन थी ॥ शिव-
पाम्यां गजसुख मालरे ॥ चरम जिनन्द चोवीसमां ॥ कष्ट
खमिया अति सुविसालरे ॥ कष्ट ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १७ ॥ बहु
वर्षे तीव्र वेदनां । सही चक्री सनत कुमाररे ॥ मुक्ति गया
कर्म क्षय करी । पाया आतमीक सुख साररे ॥ पाया ॥ श्रा ॥
भावो ॥ १८ ॥ मुनि जिन कल्पी उदेरिनें । लेवै कष्ट जे वि-
विध प्रकाररे ॥ तो थ्हांरे ये वेदनां सहऔं उदय थई इण वाररे ॥
सहऔं ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १६ ॥ सम भावै अय सियां ॥ ।
कर्म राशि तणू चक चूररे ॥ किंचित् काल में दुःख सह्यां ।
पावे सुगति सुख भरपूररे ॥ पावे ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २० ॥
अतिरोग पीडाणां जगतिमें । दुःख भोगै अज्ञानी जीवरे ॥ तो
तूं ज्ञानी किमकरूं ॥ वेदन उपज्यां रुदन अतीवरे ॥ वेदन ॥
॥ श्रा ॥ २१ ॥ नव महिनां गर्भावास में । परवस पायो अ-
ति दुःखरे ॥ तो स्ववस ये वेदनां । खमियां पर भव में घणों
सुखरे ॥ खमियां ॥ श्रा ॥ २२ ॥ पुद्गल सुख ये पामला ।
[illegible] दार अनन्त घणायरे ॥ गृध्य पणौं तिण में रह्यां । पडै
[illegible] सुखनीं अतरायरे ॥ पडै ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २३ ॥ आर्त
[illegible] निवार नें । ध्यावो धर्म ध्यान दिल मांहिरे ॥ अनित्य अ-
[illegible] भावनां । भावां भव २ में दुःख नांहिरे ॥ भावां ॥
॥ श्रा ॥ भावो ॥ २४ ॥ पर भवमें आयो एकलो । वलि जासे
[illegible] रे ॥ काहे भरोसै कांई रहो । जरा समझो आंणि
[illegible] ॥ जरा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २५ इम जाणीं शुद्ध निर-
[illegible] । पालो संजम सतरे प्रकाररे ॥ च्यार कषाय निवार नें ।
[illegible] पार रे ॥ [illegible] ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २६ ॥

ज्यो साधू पणों नहीं ग्रहिमको । तो श्रावकनां व्रत बाररे ॥ निर अतिचारे पालियां । पावै नेडा शिव सुख साररे ॥पावै॥ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २७ ॥ त्याग वैराग यथाविधे । करिये उत्तम साधू नीं सेवरे ॥ निन्दा विकथा परहरी । छांडो क्षुद्र भाव अहमेवरे ॥ छांडो ॥ श्रा ॥ भावो ॥२८॥ मतकरो धननूं गारवो पायो बार अनन्त अपाररे ॥ सुख दुःख बहुला पाविया । राखो चितमें समता साररे ॥ राखो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ॥ २९ ॥ धर्म अपूर्व पावियो । मिली सद्गुरु नीं जोगवायरे ॥ तो ढील करो कांई कारणें । रात दिवश ये योंहीं जायरे ॥ ॥ रात ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ३० ॥ रोग जरा जिहां लगि नहीं । पाणी पहिलां थी बांधो पाजरे ॥ मित्र स्नेही ज्यो आपणां । देवो सांनैं धर्म नु साजरे ॥ देवो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ३१ ॥ धर्म करंता जीवनें । मत पाडो तिणरे अंतरायरे ॥ तेहनां फल कडुवा घणां । पावै भव २ दुःख अथायरे ॥ पावै ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ३२ ॥ इम जाणीं गुणवंत नां । गावो गुण छै जे तेह म्हांयरे ॥ अष्टम द्वारे धार मीं ॥ धर्म करसी ते नहीं पिछतायरे ॥ धर्म ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ३३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अनित्य १ अशरण २ येकान्त ३ भावन, संसार ४ अनन्त ५ अशुचि ६ भावनां । आश्रव ७ संवर ८ निरजरा ९ फुन लोकालोकनीं ध्यावनां १० । धर्म ११ नें वलि बोधबीज १२ ये बारे भावना भाविये । परिणाम शुद्ध थिर भाव राखी । संचित पाप पुलाविये ॥ १ ॥

॥ इति अष्टम द्वार ॥

॥ अथ नवमों अणशण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

सामायक पोसा करै । प्रतिक्रमणां शुभ ध्यान ।
समता रस में झूलता । धन २ ते गुण वान ॥१॥
कुविसन तज भगवंत भज । राग द्वेष विहूं टार ।
स्व आतम में गुण घणां । करिये उज्वल सार ॥२॥
संचित पाप मिटायवा । छेहले अवशर सार ।
नवमें द्वार कह्यो भलो । अणशणनूं अधिकार ॥३॥

॥ ढाल बारमीं ॥

सीतां आविपणा नें कंद निशंक सुं ॥ एदेशी ॥

अनन्त भव रूप पुद्गल भोगव्या । पींठा अमिय समानोंरे ॥ एक एक लोक आकाश प्रदेशें । बार अनन्त पिछानोंरे ॥ धन धन गुणवंत अणशण धारे ॥ १ ॥ अनन्त पुद्गल लेई पाछा वमिया । भव २ मांहि विचारोरे ॥ तोही चेतन तुज भूख न भागी । तृष्णा अधिक अपारोरे ॥ धन २ ॥ २ ॥ सरस भोजन मन गमता पाया । दाख मन गमतो पांणीरे ॥ प्रमाद सर्प ज्यों [illegible] । अणशण करे इम जाणीरे ॥ धन २ ॥ ३ ॥ द्विविध [illegible] श्री जिनवर भाख्यो । भक्त पाडोपगमन जाणोंरे ॥ [illegible] । [illegible] ॥ धन २ ॥ ४ ॥ [illegible] । [illegible] विद्यां नें कारंचरे ॥ [illegible] । [illegible] महाराज नें उचारि-

येरे ॥ धन २ ॥ ५ ॥ असरण खादम स्वादम प्रीत तजनें। अवसर जाणि पांणी परिहारोरे ॥ तृषा परिसह आय ऊपनां। आडग रहै सुविचारोरे ॥ धन २ ॥ ६ ॥ मात तात सुत बंधव त्रीया। इत्यादिक पर वारोरे ॥ हाट हवेली बाग बगीचा। तेहथी स्नेह निवारोरे ॥ धन २ ॥ ७ ॥ रतन करंडिया समये काया। तेहनें पिण वोसरावैरे ॥ सावद्य कारज नहिं करै तिणसें। धर्म ध्यान चित्त ध्यावेरे ॥ धन २ ॥ ८ ॥ आनन्द श्रावक कियो संथारो। अवधि ज्ञान उपज्यो आईरे ॥ सुधर्म कल्पे जाय ऊपनूं। येकावतारी थाईरे ॥ धन २ ॥ ९ ॥ सम परिणामां कष्ट सह्यां थीं। कर्म निरजरा थावेरे ॥ संसार भ्रमणनूं छेद करै फुन। पुन्यरा थाट बंधावैरे ॥धन २॥१०॥ इण पर लोकनीं बंछा न करतो। जीतब मर्ण न चावैरे॥ काम भोगनीं आशा तजनें। गुणवंत नां गुण गावेरे ॥धन २॥११॥ शिव सुख मामीं दृष्टी राखें। रमण करै निज गुनमेंरे ॥ आतम सुख अभिलषी श्रावक। मार न जांणे सुख पुन्यमेंरे ॥धन२॥ ॥ १२ ॥ नवमें द्वार ह ल वारमीं। कह्यो असरण अधिकारोरे॥ छेहलै अवसर करै गुणवंत श्रावक। पामै सुख अपारोरे ॥ धन २ ॥ १३ ॥ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अपार सुख शिवनां कह्या तिहां जन्म जरा मृत्यु नहीं। नहिं रोग सोगरु भोग बंछा वलि दुगंछा नहिं रही ॥ जिहां रमन है उपियोग केवल ज्ञान दरशन में सही। षट द्रव्य भावनां जांणछे प्रभू सिद्ध लोकाग्रे रही ॥ १ ॥

॥ अथ दशमूं द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दशमें द्वार करै सही, पांच पदा नुं जाप ।
विघन मिटै स्मरण कियां, क्षय पावै सहु पाप ॥१॥

अरिहन्त सिद्धनें आयरिया, उवझाया अणगार ।
भजन करै इण पांचनें, तेहथी जय जयकार ॥२॥

॥ ढाल तेरमी ॥

यना माह निरखण दे गन गोर । तथा आतम सुभाव पीलख करणी हुं पामें भव जलतीर ॥ एदेशी ॥

शुभ परिणाम शान्ति शुभ लेश्या । प्रसस्त भलाअध्यव साय ॥ सदा निशि धर्म ध्यान दिल धरतां । कर्म पटल क्षय जाय ॥ कर्म ॥ सुगण जन ॥ जी थांरो आतम गुन प्रगटाय । सुगण जन । जपिये श्री नवकार ॥ १ ॥ जेहनें सखाय पणें [illegible] पामें । परभव सम्पति सार ॥ भण भोगिक सुर पदवी पामें । इन्द्रादिक अवतार ॥ इन्द्रादिक ॥ सु ॥ इंद्रा ॥ जी थांरो आतम ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २ ॥ पंच परमेष्ठ [illegible] जपिये । भव दधि गोपद जेम ॥ सीघ्र पणें तारिये [illegible] । पुन [illegible] जल तेम ॥ फुन ॥ सु ॥ फुन ॥ जी थांरो ॥ आ ॥ जपिये ॥ ३ ॥ वहता वरावतो बालक आ- [illegible] । [illegible] हेठ सिवार ॥ [illegible] नवकार इसी मांहि पैठो । [illegible] ॥ सिरिता ॥ सु ॥ जी थांरो ॥ सु ॥

जपिये ॥ ४ ॥ रतनवती जे भीलनीं नारी । तिण सुमरयो नव कार ॥ किंचित कालमें पुन्य उपावी । पांचमें कल्प अवतार ॥ ॥ पांचमें ॥ सु ॥ पांच जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ५ ॥ सर्प तणीं थयी पुस्पनीं माला । श्रीनवकार प्रभाव ॥ श्रीमतीं सती कीर्ति लहि भारी । उभय भवें सुख सार ॥ उभय ॥ सु ॥ उभय भवें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ६ ॥ जहाज डूबंता सेठ समुद्रे । गुणियो श्री नवकार ॥ सहाय कियो सुर जहाज उठावी । मेलदी पैली पार ॥ मेलदी ॥ सु ॥ मेलदी पैली पार जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ७ ॥ श्री नवकारनुं स्मरण करतां दूर टलै जंजाल ॥ वैरी दुस्मन डायण सायण । नांश जावै तत्काल ॥ नांश जावै ॥ सु ॥ नांश जावै ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ८ ॥ समदृष्टी श्रावक गुणवंता । जे सुमरै नवकार ॥ जेहनां फलनुं कहिवुं किस्युंते । पामें भवजल पार ॥ पामें भव-जल पार ॥ सु ॥ पामें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ९ ॥ इम जाणीं स्मरण नित करिये । धरिये आतम ध्यान ॥ निर-वध करणी फुन आचरिये ॥ सुनिये श्रीजिन वान ॥ सुनिये ॥ सु ॥ सुनिये ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १० ॥ निजपर भाव विलोक यथार्थ ॥ श्रद्ध द्रव्य षट काय ॥ आरंभ छोड तोड अघघाती । शिव गति नेडी थाय ॥शिव॥सु॥११॥ मच्छर भाव तजी नित तू तो । गुणवंतनां गुण गाय ॥ ज्ञाता सूत्र विषे जिन भाख्यो । गौत तीर्थंकर बंधाय ॥ गौत्र ॥ सु ॥ गौत्र जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १२ ॥ श्री जिन शाशण पंचमें आरें । भिक्षु गणीं सुख दाय ॥ विविध मर्याद बांदि गण वत्सल मिथ्या तिमिर हटाय ॥ मिथ्या ॥ सु ॥ मि ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १३ ॥ द्वितिये पाट भारी माल गणाधिप ।

तृतिय पाट ऋषिराय ॥ तुर्य जयाचार्य महा प्रभाविक । लाखां ग्रन्थ बणाय ॥ लाखां ॥ सु ॥ लाखां ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १४ ॥ मघवा सम मघराज पंचमें । तसु पट माणिक कहाय ॥ सप्तम पट श्री डालचंद गणीं । दीर्घ दृष्टी सुख दाय दीर्घ ॥ सु ॥ दीर्घ ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १५ ॥ तेहने पाटे वर्तमान में । शोभत जिम जिनराय ॥ श्री श्री कालूराम गणीस्वर । प्रणम्यां पातिक जाय ॥ प्रणम्यां ॥ सु ॥ प्रणाम्यां ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १६ ॥ येह जिन शाशन सुखनुं दाशन । ये गणनें गणिराय ॥ अहो निशि सेवा करले भविजन । भव कर अवरनीं चहाय ॥ भव ॥ सु ॥ भव ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १७ ॥ इण शाशन में रक्ति रहै । सांरी करत सदा सुर सहाय ॥ ऋद्धि वृद्धि थावै दुःख मिट जावै विघ्न न होवै कांय ॥ विघ्न ॥ सु ॥ विघ्न ॥ जी थांरो ॥सु॥ जपिये ॥ १८ ॥ च्यार तीर्थ सुख धाम स्वाम मुझ । श्री कालूगणि राय ॥ तेहनुं श्रावक गुलाब कहै ॥ थयो आनन्द हर्ष सवाय ॥ आनन्द ॥ सु ॥ आनन्द॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १९ ॥ तसु आदेशी संयम भेषी । आतमां अर्थी जान ॥ पूनमचंद मुनि शान्ति मुद्रा । पूनमचंद समान ॥ पूनम ॥ सु ॥ पूनम ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ २० ॥ चंप तरु सम चंपालाल ऋषि । ज्ञान दोलत हंत जान ॥ दोलतराय मुनि ये दोनुं । वांचै करत वखान ॥ वांचै ॥ सु ॥ वांचै ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ २१ ॥ उगणीसय बहोत्तर सम्वत में । जेष्ठ मास [illegible] ॥ तेरा ढाल दयाविध आराधन । कहि जयपुर [illegible] ॥ कहि ॥ सु ॥ कहि ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये [illegible] ॥ २२ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

सुखदाय आराधन करै इम, भविक मन उच्छाह ही । ते पाप पंक निशंक टालै, व्रत संभालि उमाह ही ॥ श्री कालू गणी महाराज मुनि शिरताज तासु पसाय ही । कहै गुलाब निज गुन स्वाब प्रगटै, भण्यां आनन्द थाय ही ॥ १ ॥

॥ इति दशविध आराधन ॥

॥ अथ स्वामी श्री भीखनजी कृत ॥

॥ श्रावक गुण सज्झाय ॥

॥ कैकईरे कुकला केलवे ॥ एदेशी ॥

भिन भिन जाणेरे श्रावक जीवनें । जाणै अजीव पुन्य पापोजी ॥ आश्रवनें जाणैरे कर्म लगावतो । संबर टालै संतापोजी ॥ भगवंत भाख्यारे श्रावक एहवा ॥ १ ॥ निरजरा पाडेरे ढीलो बंधनैं । करणी करै तिण हेतोजी ॥ मुक्ति तणां सुखजाणै सास्वता । उघड्या अभ्यन्तर नेतोजी ॥ भ ॥ २ ॥ पोतै परखैरे गुरुनें अकल सूं । अन्तरंग ज्ञान विचारोजी ॥ भेष देखी श्रावक भूलै नहीं । देखै शुद्ध आचारोजी ॥ भ ॥ ३ ॥ व्रतांनें जाणैरे माला रतनां तणीं । अव्रत अनर्थ खाणोंजी ॥ रेणादेवी थी पिणये बूरी । खागे मांठी जाणोंजी ॥ भ ॥४॥ आदरिया व्रत साधू मांहिला । ये म्हांरे जिनधर्मोजी ॥ सेष रह्या जे कांम संसारनां । तिणसुं बंधता जाणे कर्मोजी ॥ भ ॥ ॥५॥ श्रावक जाणैरे श्रीजिन आगन्या । जाणै धर्म अधर्मोजी

जिण करणी में नहिं जिन आग्न्या ॥ तो बंधता जाणो कर्मोजी
॥ भ ॥ ६ ॥ परचो पाखंडियांरो श्रावक नहिं करै । नहिं करै
तिणसुं वातोजी ॥ नींचो मस्तक श्रावक नहिं करै । नहिं करै
ऊंचा हातोजी ॥ भ ॥ ७ ॥ भ्रमायो किणरो लागे नहीं ।
नहिं करै कूडी ताणोजी ॥ धर्म ठिकाणैरे झूंट बोलै नहीं ।
पालै श्रीजिन आणोजी ॥ भ ॥ ८ ॥ गुरुनें देखैरे दोष लगा-
वता । तो तुरत करै नीकालोजी ॥ लाला लोलोरे कर ऊठै
नहीं । आ जिन शाशनरी पालोजी ॥ भ ॥ ९ ॥ कुगुरु वंद-
नारो फल तिहां ओलखे । रूलै अनन्तो कालोजी ॥ आगल
गुरांनें श्रावक वंदै नहीं । भगवंत वचन संभालोजी ॥भ॥१०॥
कुगुरुनें जाणैरे काला नागज्यूं । करडो तिणरो डंकोजी ॥
मुक्ति नगरनां ते छै धाडवी । चोड़े खासै निःशंकोजी ॥ भ ॥
॥ ११ ॥ गुण रत्नाणरे साधां आगले । येकाकी चित ल्या-
वोजी ॥ साधु करैं ते सुंणा सुंणा हुलसै । मन रलिया यत थायो-
जी ॥ भ ॥ १२ ॥ सद्गुरु वांदैरे भले मन भावसुं । नींचो
शीश नमायोजी ॥ तांन मदत्तणां दो कर जोडिनें । पगांरै
मस्तक लगायोजी ॥ भ ॥ १३ ॥ मार्गे जातांरै मुनिवर ज्यो
[illegible] । [illegible] हर्षित पायोजी ॥ विकसत थावैरे मुनिवर देख-
[illegible] । [illegible] करै [illegible] नरमायोजी ॥ भ ॥ १४ ॥ वारा व्रतरे
[illegible] । [illegible] ने आगारोजी ॥ पोतै सेवै सेवावै श्राव-
[illegible] । [illegible] नहिं [illegible] धर्म लिगारोजी ॥ भ ॥ १५ ॥ उपाज
[illegible] पारखो । घररो कांम चलायोजी ॥ धर्म
[illegible] । इकडो न करै अन्यायोजी ॥भ॥
[illegible] निन्दक पापियो । ते निन्दा नरक ले
[illegible] निन्दारे नहिं करै केहनीं । जिन शाशन

मांहि आयोजी ॥ भ ॥ १७ ॥ जतला द्रव्य छे लोका लोक में । जाणैं तिणरो न्यायोजी ॥ द्रव्य खेत्र कालनें वलि भाव सुं । जाणें गुण पर्यायोजी ॥ भ ॥ १८ ॥ मोसा मर्म न वोलै केहनें । न करै कूडी वातोजी ॥ कूड कथन नहिं करै श्रीजिनमती । नहिं करै दगो नें घातोजी ॥ भ ॥ १९ ॥ ओछा बोल न बोलै केहनें । गुण कर गहर गंभीरोजी ॥ चरचा कर तांरे विच वोलै नहीं । जिम छाली पीवै नीरोजी ॥ भ ॥ २० ॥ लोक सुणें बखाण साधां आगलै । नहिं पाडै तिणमें वेदाजी ॥ कर्म घणां पैलो समझै नहीं । नहीं करै क्रोधनें खेदाजी ॥ ॥ भ ॥ श्रा ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ अथ जिन आणां धर्म स्तनम् ॥

॥ राग आसावरी ॥

भविका जिन आणां धर्म धारो । येतो मानों कह्यो हमारोरे ॥ भविका जिन ॥ ए आंकडी ॥

श्री तीर्थ पति धर्म धुरंधर । जग वत्सल सुखकारो ॥ अनन्त ज्ञान दरशन चारित्र धर । तेहुं कीजे नमस्कारोरे ॥ ॥ भविका जिन० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र तप नींका । मोक्ष मार्ग ये च्यारो ॥ श्रीजिन आणां में चिहुं आया । उत्राध्ययन अधिकारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ २ ॥ संवरनें वलि निरजरारे । धर्म ये दोय प्रकारो ॥ ये भल रीत आराध्यां चेतन । पामैं भव नुं पारोरे ॥ भ ॥ जिन ० ॥ ३ ॥ पंच महाव्रत साधू केरा । श्रावक नां व्रत वारो ॥ जिन आणां में ये विहुं

आणा । अविरत इह गई न्यारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ४ ॥ सर्व व्रत धारी संजती कहिए । अविरत असंजति धारो ॥ व्रताव्रती श्रमणोपासक । ते व्रत जिन आज्ञा मंझारोरे ॥ भ ॥ ॥ जिन० ॥ ५ ॥ श्रावक नों खाणों पीणों ते । सावद्य जोग व्यापारो ॥ जिन मुनि आज्ञा न देवै तिणरी । धर्म न होवै लिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ६ ॥ खाणां पीणां नें धन धान्यादिक । अविरत में अधिकारो ॥ उववाई सूयगडा अङ्ग मांही । पाठ देख उर धारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ७ ॥ मुझ आणां में म्हारो धर्म छै । आचाराङ्ग संभारो ॥ चरम जिनेश्वर वीर परमेश्वर । आपणपा हंत सारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ८ ॥ तेह धर्म नां दोय भेद छै । दशवै कालिक मझारो ॥ अहिंसा है जिण कर्तव्य में । वली संजम तप सारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ९ ॥ सुगुरु आसीस पिण येहिज दीनी । आगमदेख विचारो ॥ आलस मत करिज्यो आणां में । उत्तम आज्ञां धारोरे ॥ भ ॥ ॥ जिन० ॥ १० ॥ निरवद्य कार्य मांहि आज्ञा । जिन मुनि दे इक धारो ॥ सावद्य मांहि आज्ञा नव आपै । नहीं संदेह लिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ११ ॥ करण करावण वलि अनुमोदन ॥ येह तीनूं इक सारो ॥ श्रीजिन आज्ञा शिर धारीजे । तब होवै निस्तारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १२ ॥ केई आज्ञा में पाप बतावै । धर्म बिन आज्ञा बारारो । दोनूं वातां अशुद्ध प्ररूपै । ते किम पामै भव पारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १३ ॥ श्रीजिनमत का साधु दाखै ॥ आपै विना विचारो ॥ दृष्टान्त देई भोला नें । बहकावै निराधारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १४ ॥ जो थारै हिरदो होवै तो । इण साधु गुरु धारो भेषधारयां नी सङ्गति तजदे । अवसर हाथ विचारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥

॥ १५ ॥ जो पूरी समझ पडै नहीं तो । शुद्ध जपा नवकारो ॥ गुणवन्तो का गुण गाई नें । अशुभ कर्म सब टारोरे ॥ भ ॥ ॥ जिन० ॥ १६ ॥ निन्दा विकथा दूर तजी नें । सूत्र सुणों सुख कारो ॥ जिण आज्ञा बाहर धर्म कहि नें । परभव मतनां बिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १७ ॥ अहिंसा धर्म मुखसुं कहि नें । म करो हिन्सा प्रचारो ॥ हीणाचारीकृत ग्रन्थ वांचके । अहलो जन्म मत हारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १८ ॥ ठांम ठांम जिन आगम मांहीं । आज्ञा अधिक उदारो ॥ धारो जिन आणां धर्म नीको ॥ गुलाब कहै सुख कारोरे ॥भ॥जिन०॥१९॥ इति॥

॥ अथ जिनमार्गस्तवनम् ॥

॥ राग उजाड़ में ॥

शुद्ध मग सांचो भूलै मतजाय । प्यारे तोनें कहूं छूं समजाय ॥ शु ॥ ए आंकडी ॥

दान शील तप भाव ये च्यारों । शिवपुर केरा राह ॥ झूठो पंथ छांड अब प्राणी । ज्यो आतम सुख चाह ॥ शु ॥ ॥ १ ॥ दान सुपात्रें दोहिलोरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ चित वित पात्र तीनूं शुद्ध मिलियां । मन वान्छित फल पाय ॥शु॥ ॥ २ ॥ चित शुद्ध दातानूं भलोरे । वित शुद्ध वस्तु कहाय ॥ पात्र सु साधू जानियेरे । जे न हणें षटकाय ॥ शु ॥ ३ ॥ देतां दाता दान सुपात्रें । संचित कर्म हटाय ॥ उत्कृष्टो रस आवियांरे । तीर्थंकर पद पाय ॥ शु ॥ ४ ॥ चौथे ठाणें आखियोरे । पंचमुदेशा मांय ॥ कुपात्र ते कुक्षेत्र छेरे । वोयां

निरफल पाप ॥ शु ॥ ५ ॥ असंजती अविरती नें रे । अष्टम
शतक कहाय ॥ छट्ठे उद्देशे गोतम पूछयो । वीर प्रति सुखदाय
॥ शु ॥ ६ ॥ सचित अचित असू अमासू । प्रति लाभ्यां स्युं
थाय ॥ जिन कहै येकान्त पाप हुवेरे । निरजरा किंचित नांए
॥ शु ॥ ७ ॥ आनन्द श्रावक लियो अभिग्रह । उपाशक दशा
कहाय ॥ अन्य तीर्थी नें आजथीरे । देवूं देवावूं नांहि ॥ शु ॥
॥ ८ ॥ मृगा लोढा नें देख नें रे । गोतम जिनपे आय ॥
पूछे स्यूं कीधो इण पूर्वे । तेहना येह फल पाय ॥ शु ॥ ९ ॥
तिणसुं दान कुपात्र नांरे । फल अति कटुक कहाय ॥ हिन्सक
भणीं हिन्सा करि दीधां । धर्म किहां थी थाय ॥ शु ॥ १० ॥
सावद्य दान प्रसंसियांरे । घातक कहिये ताहि ॥ सुयगडा अङ्ग
ग्यारवें अध्ययन नें । वीसमी गाथा मांहि ॥ शु ॥ ११ ॥ दान
निषेधां अणुचालानीं । वृत्ती नें छेदक थाय ॥ तिण कारण
वर्तमान काल में । मून करे मुनिराय ॥ शु ॥१२॥ पटकायांगी
रक्षा निमित्तें । पुन्य नहीं कहणो ताय । [illegible] सुयगडा अङ्ग
में रे । भाख्यो श्री जिनराय ॥ शु ॥ १३ ॥ [illegible] अध्य-
यन में रे । बत्तीसमीं ज गाह ॥ दान देतां लेतां [illegible] ॥
मुनि न कहै हां नांहि ॥ शु ॥ १४ ॥ [illegible] हेतु [illegible] ।
[illegible] भणीं जे दान ॥ [illegible] मुनिवरे । सुयगडा
अङ्ग जान ॥ शु ॥ १५ ॥ [illegible] ॥ अनु-
मोद्यां सें पाप ॥ निसीथ उद्देशे [illegible] । भाख्यो श्री जिन-
राय ॥ शु ॥ १६ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] सुयगडा अङ्ग [illegible]
॥ शु ॥ १७ ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]

॥ १८ ॥ श्रावकनीं जे आतमारे । अविरत नीं अपेक्षाय ॥ शस्त्र अछै छकायनुंरे । निमल विचारो न्याय ॥ शु ॥ १६ ॥ सामाइक में पिण कहीरे । अधिकरण जिन राय ॥ भगवती सप्तम शतकमेरे । प्रथम उद्देसा मांय ॥ शु ॥ २० ॥ खाणां पीणां पहरणांरै । साग्यां थी हूवै धर्म ॥ भोग्यां भोगायां वलि अनुमोद्यां । वंधे अशुभ अघ कर्म ॥ शु ॥ २१ ॥ साता दियां साता हूवेरे । इम अन्य तीर्थी कहंत ॥ सुयगडा अंग श्री जिन भाष्यो । ते सुणिज्यो विरतंत ॥ शु ॥ २२ ॥ न्यारो आज्ञ मार्ग थीरे । अलघो समाधि थी जांण ॥ धर्म तणीं निन्दानुं करता । जेह वधे इम वांण ॥ शु ॥ २३ ॥ अल्प सुखांरै कारणेरे । बहुत नु हारण हार ॥ अमोलखरो कारण अछे । भाष्यो श्री जगतार ॥ शु ॥ २४ ॥ लोह वणिक जिम झूरसीरे । तेह प्ररुपणाहार ॥ सूत्र देख निरणय करोरे । जिम होवै निस्तार ॥ शु ॥ २५ ॥ पात्र कुपात्रें आंतरोरे । सरिषो फल नहिं थाय ॥ आम्ब भरोसै बोयां धत्तूरो । आम्ब किहां थी खाय ॥ शु ॥ २६ ॥ निरारंभी विन अवरनेरें । देवै दिवावै ताहि ॥ ते मारग लोकीके छेरे । पिण शिव मारग नांहि ॥शु॥ ॥ २७ ॥ राय प्रश्रेणी सूत्रमेरे । प्रदेशी राजान ॥ च्यार भाग करि राजरारे । थयो धर्म करण सावधान ॥ शु ॥ २८ ॥ येक भाग रायां निमित्तरे । दूजो भाग खजान ॥ तीजो हय गय अर्थहीरे । चौथो भागरो दान ॥ शु ॥ २६ ॥ इम चिहूं भाग करी तिणेरे । अन्य भणी वौलाय ॥ संसारिक लफरो इम मेटी ॥ छट्ठम छट्ठम तप ठाय ॥ शु ॥ ३० ॥ व्रतधारी श्रावक थयोरे । धर्म ध्यान चित ध्याय ॥ तेरा वेला करि कारज सारया । प्रथम उपाङ्गरे मांय ॥ शु ॥ ३१ ॥ दान सुपात्रने दीजियेरे ।

ईकर मत पामाय ॥ धुरमार्ग ये शिव तणोंरे । भाख्यो श्री जिनराय ॥ शु ॥ ३२ ॥ सुभाऊ प्रमुख पूर्व भवेंरे । सुख विपाकर मांहि ॥ दान देई शुद्ध साधुनेंरे । एकावतारी थया ताहि ॥ शु ॥ ३३ ॥ शिव मग दूजो शीलछेंरे । तीजो तप कहिवाय शुभ भावन चोथो कह्योरे । आराध्यां सुख थाय ॥ शु ॥ ३४ ॥ अथवा उत्तराध्ययन मेंरे । मोक्ष मार्ग इम च्यार ॥ ज्ञान दर्शन चारित तप नींका । वलि धुर अंग मझार ॥ शु ॥ ३५ ॥ सम्यक् ज्ञान दर्शन थकीरे । तत्व यथा तत्थ जांण ॥ कर्म रुके चारित्र थीरे । तप सूं कर्म हांणा ॥ शु ॥ ३६ ॥ जिन भाखित येह मार्ग छेरे । धन्य धन्य मति जान ॥ गुलाब कहे भल भाव सेंरे । साध्यां शिव सुख स्थान ॥ शु ॥ ३७ ॥ इति ॥

॥ अथ असंयम जीवितव्य वर्जनीय ढाल ॥

आज नन्दन वन लोनी आयो । जोगीरो मन भरमायो हे मा ॥ इस चालमें ॥

असंजम जीतव मतवांछो देखो दरशणो श्रीजिनरायेर लो ॥ ए आंकड़ी ॥ जीवणो मरणो नांहि वंछणो । दाख्या अंग दशमा मांहो रेलो ॥ पुनवृत्तगहोण दशम अध्ययनें । नाया वोदीनथी ताहेरे ॥ लो ॥ अ ॥ १ ॥ अरु आचार वेना मुनि चिवै । श्री सुयगडा अंग मांहो रेलो ॥ असंजम जीवितव्यनी करपी । ते दाख अज्ञानी दाखो रेलो ॥ अ ॥ २ ॥ संजम जीतव भलो कोहिलो । असंजम जीतव नांखो रेलो ॥ दस अनन्त पाप्पो भव भवमें । संजम करी नहिं वांछो रेलो ॥ अ ॥ ३ ॥ संसारिक जीवां नूं जीवणो । वंछता धर्म न दाखो रेलो ॥ अ-

रागी देख्यां राग ऊपजै । द्वेषी सुं द्वेष सवायो रे लो ॥श्र॥४॥
वंछै संसारिक जीवणु मरणु । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥
रागते दशमूं द्वेष ग्यारमूं । भगवंत पाप बतायो रे लो ॥ श्र ॥५॥
इंद्र परिक्षा करण मुनिनीं । ब्राह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मि-
थिला नगरी आग्न सुं बलती । नमिराय प्रते दरशायो रे लो ॥
॥ श्र ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन बलता देखी । तांम नांम ऋ-
षिरायो रे लो ॥ स्हामों न जोयो करुणा न आंणी । उत्तराध्ये-
यन मांह्यो रे लो ॥श्र॥७॥ कह्यो बसूं जीवूं में सुखसूं । संजम में
लवल्यायो रे लो ॥ ए मिथिला जन बलतां म्हांरो । किंचित
बलै न ताह्यो रे लो ॥ श्र ॥८॥ सूत्र निशीथ द्वादशम् उद्देशे।
पाठ विषै इम बायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि ।
बांधे बंधावै सरायो रे लो ॥ श्र ॥ ९ ॥ अथवा बंधिया देख
जीवां प्रति । करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावै वलि
अनुमोदै । तो चौमासी चारित्र जायो रे लो ॥ श्र ॥ १० ॥
चूलनी प्रिया श्रावक मोटो । पोसा में सुखदायो रे लो ॥ पूत्र
तीन मुख आगलि मरता । देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ श्र ॥
॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसामें । ऊठ्यो छुडावण कांमो
रे लो ॥ भांगो पोसो ब्रत नेम कह्यो । उपाशक दशामें आंमो
रे लो ॥ श्र ॥१२॥ चंपा नगर तणां व्योपारी । जहाज भरी
समुद्रें जावै रे लो ॥ एक देव तब करण परिक्षा । तिण अव-
शर तिहां आवै रे लो ॥ श्र ॥ १३ ॥ अरणक श्रावक बैठो
तिणमें । देव कहै समजायो रे लो ॥ सहू मनुष्य सहित ये ज-
हाज डबोऊं । मान हमारी बायो रे लो ॥ श्र ॥१४ ॥ ज्यो तूं
मुख सु धर्म छोडयो कहै । तो सहू जीव बच जायो रे लो ॥
इम सांभल अरणक दृढ मन करि । धर्म ध्यान चित ध्यायो

रेलो ॥ भ ॥ १५ ॥ डिगायो डिगयां नहिं श्रावक । करुणा मोह न ल्याया रे लो ॥ उपसर्ग दूर कियो तब निरजर । सुरेन्द्र हास सराया रे लो ॥ भ ॥ १६ ॥ दिव रूप करि कर जोडी सुर । बोल्यो इह विधि वायो रे लो ॥ प्रिय धर्मी दृढ धर्मी तूं सांचो । ए साम अंग रे मांयो रे लो ॥ भ ॥ १७ ॥ श्रीजिन मुख सूं सूत्रे भाख्यो । स्नेह राग दुख दायो रे लो ॥ कर्म बीज राग द्वेष देहूं नज । ज्यो शिव सुन्दरीं व्हाया रे लो ॥ ॥ भ ॥ १८ ॥ जे संसारिक जीवांनीं करुणा । करे उपकार स्नेह ल्यायो रे लो ॥ ते उपकार संसार तणु छे । जिन धर्म नहिं तिण मांयो रे लो ॥ भ ॥ १९ ॥ जीव जीवै ते दया म जाणों । मरें ते हिन्सा नाणों रे लो ॥ मारण वाला हिन्सक पापी । नहीं मारे ते दया सुख दायो रे लो ॥ भ ॥ २० ॥ येह संसार समुद्र थकी तिर । केवल निरवद्य पायो रे लो ॥ गुलाब कहे धन्य ते नर जाणों । जे रागद्वेष ल्यागो रे लो ॥ ॥ भ ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

ताप केसे गजको फंद छुडायो ॥ तथा ॥ श्रावन की गालियन में गिरधारी ॥ इस चाल में ॥

करो तुम दया धर्म सुख कारी । जासें जल्दी होय निस्तारी ॥ करो ॥ ए आंकणी ॥ छःविधि काय जेह जानू वनस्पति । त्रस जीव अधिक भयकारी ॥ देह रक्षा कर इनों बन कोई । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ सर्व प्राणु भूत जीव सत्व मांहि । नहिं हणवा सुविचारी ॥ ऐह करि सा-

रागी देख्यां राग ऊपजै । द्वेषी सुं द्वेष सवायो रे लो ॥श्र॥४॥ वंछै संसारिक जीवणु मरणु । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥ रागते दशमूं द्वेष ग्यारमूं । भगवंत पाप बतायो रे लो ॥ श्र ॥५॥ इंद्र परिक्षा करण मुनिनीं । ब्राह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मिथिला नगरी अग्नि सुं बलती । नमिराय प्रत दरशायो रे लो ॥ ॥ श्र ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन बलता देखी । तांम नांम ऋषिरायो रे लो ॥ म्हामों न जोयो करुणा न आंणी । उत्तराध्येयन मांह्यो रे लो ॥श्र॥७॥ कह्यो वसूं जीवूं में सुखसूं । संजम में लवलयायो रे लो ॥ ए मिथिला जन बलतां म्हारो । किंचित बलै न ताह्यो रे लो ॥ श्र ॥८॥ सूत्र निशीथ द्वादशम उद्देशे । पाठ विषै इम बायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि । बांधे बंधावै सरायो रे लो ॥ श्र ॥ ९ ॥ अथवा बंधिया देख जीवां प्रति । करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावै वलि अनुमोदै । तो चौमासी चारित्र जायो रे लो ॥ श्र ॥ १० ॥ चूलनी पिया श्रावक मोटो । पोसा में सुखदायो रे लो ॥ पूत्र तीन मुख आगलि मरता । देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ श्र ॥ ॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसामें । ऊठ्यो छुडावण कांमो रे लो ॥ भांगो पोसो व्रत नेम कह्यो । उपाशक दशामें आंमो रे लो ॥ श्र ॥१२॥ चंपा नगर तणां व्योपारी । जहाज भरी समुद्रें जावै रे लो ॥ एक देव तव करण परिक्षा । तिण अवशर तिहां आवै रे लो ॥ श्र ॥ १३ ॥ अरणक श्रावक बैठो तिणमें । देव कहै समजायो रे लो ॥ सहू मनुष्य सहित ये जहाज डबोऊं । मान हमारी बायो रे लो ॥ श्र ॥१४ ॥ ज्यो तूं मुख सु धर्म छोडयो कहै । तो सहू जीव बच जायो रे लो ॥ इम सांभल अरणक दृढ मन करि । धर्म ध्यान चित ध्यायो

रेलो ॥ भ ॥ १५ ॥ डिगायो डिगयां नहिं श्रावक । करुणा मोह न ल्यायां रे लो ॥ उपशर्ग दूर कियो तव निरजर । सुरेन्द्र तास सरायो रे लो ॥ भ ॥ १६ ॥ प्रिय रूप करि कर जोडी सुर । बोल्यो इह विधि वायो रे लो ॥ प्रिय धर्मी दृढ धर्मी तूं सांचो । ए सप्तम अंग में मांयो रे लो ॥ भ ॥ १७ ॥ श्रीजिन मुख सुं सूत्रें भाख्यो । स्नेह राग दुख दायो रे लो ॥ कर्म बीज राग द्वेष बेहूं तज । ज्यो शिव सुखनीं च्हाया रे लो ॥ ॥ भ ॥ १८ ॥ जे संसारिक जीवांनीं करुणा । करै उपकार स्नेह ल्यायो रे लो ॥ ते उपकार संसार तणुं छै । जिन धर्म नहिं तिण मांयो रे लो ॥ भ ॥ १९ ॥ जीव जीवै ते दया म जाणों । मरै ते हिन्सा नाहीं रे लो ॥ मारण वाळो हिन्सक पापी । नहीं मारै त दया सुख दायो रे लो ॥ भ ॥ २० ॥ येह संसार समुद्र थकी तिर । वंछ तू तिरणों परायो रे लो ॥ गुलाब कहै धन्य ते नर जाणों । जे रागरु द्वेष खपायो रे लो ॥ ॥ भ ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

नाथ कैसें गजको फंद छुडायो ॥ तथा ॥ आवत मेरी गलियन में गिरधारी ॥ इस चाल में ॥

करो तुम दया धर्म्म सुख कारी । यातैं जलदी होय निस्तारी ॥ करो ॥ ए आंकडी ॥ पृथिवी अप्प तेऊ वायु वनस्पति । त्रश जीव अधिक अपारी ॥ येह पटकाय हणों मत कोई । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ सर्व प्राण भूत जीव सत्व प्रति । नहिं हणवा सुविचारी ॥ दंडै करि ता-

हवा नहिं सानैं । तं न मन्झावेयव्वा कह्यारी ॥ करो ॥ २ ॥ न परि घेतव्वा च्याकर सगी पैं । किणही कार्य मझारी ॥ न परितापव्वा पीडा देईनैं । वलि किलामना न करणी सारी ॥ क ॥ ३ ॥ उपद्रव न देणों किणही जीवनैं । इम भाख्यो जगतारी ॥ तीन कालनां जिननीं ये वांणी । द्वितीय सुयगडाङ्ग जहारी ॥ करो ॥ ४ ॥ इमहिज प्रथम अङ्गमैं भाख्यो । जोवो नयन उघारी । जीव हिन्सा कियां पाप घणेरो मत हणों एम विचारी ॥ करो ॥ ५ ॥ गौतम पूछ्यो पंचम अङ्ग। पृथिवी हात मझारी ॥ लेतां वेदन कितनीं होवै । जिन कहै दृष्टान्त उदारी ॥ करो ॥ ६ ॥ एक पुर्ष कोई जन्म नूं आंधो । पग-हींण खीण काया सारी ॥ जन्म नूं बहरो जन्म नूं गूंगो । तनु में रोग अपारी ॥ करो ॥ ७ ॥ तरुण पुरुष तसु खडग भालै करि । छेदै भेदै क्रोध धारी ॥ वेदना होवै अथ पुर्ष नैं । छेद्यां भेद्यां तिणवारी ॥ करो ॥ ८ ॥ तिणथी अधिक कष्ट पृथिवी नैं । लेतां हात मझारी ॥ इम थावर पांचूं प्रति वेदन आगम में अधिकारी ॥ करो ॥ ९ ॥ निगोद जमींकंद वन-स्पति का । सुनिये हिव विस्तारी ॥ अग्र सूई पै आवै तिणमें । श्रेणि असंख्य कह्यारी ॥ करो ॥ १० ॥ इक इक श्रेणि में प्र-तर असंख्या । प्रतर येक मझारी ॥ गोला असंख्य हैं इक इक गोलै । शरीर असंख्या व्हारी ॥ करो ॥ ११ ॥ इक इक श-रीरें जीव अनन्ता । कहतां न आवै पारी ॥ इम जाणीं हिन्सा नहिं करिये । जिन धर्म मर्म विचारी ॥ करो ॥ १२ ॥ धुर आश्रव धुर पापनुं स्थानक । दुरगति दुःख दातारी ॥ आरंभ छांडि दया दिल धारिए । जिम पामों भव पारी ॥करो॥१३॥ हिन्सा कियां में धर्म न किमपि । आगम मांहि सुनारी ॥ एके-

न्द्री गाए थावरइन्द्री पोख्यां । धर्म पुन्य नाहिं अनारी ॥ करो ॥ ॥ १४ ॥ केवल पडिमां करै करावै । पृथिवी काय विडारी ॥ कह्यां अर्हंत अगोधनूं कारण । धुर अङ्ग जगतारी ॥करो॥१५॥ जीव हणियां में दोष न होवै । हणियां न दोष उचारी ॥ ए आर्य्य अनार्य्य ना वचन कह्या जिन । आचारंग संभारी ॥ ॥ करो ॥ १६ ॥ इम जाणीं परम धर्म ए करिये । अहिंसा सुख कारी ॥ गुलाबचंद कहै धन्य शुद्ध साधू । चरण कमल वलिहारी ॥ करो ॥ १७ ॥

॥ कलश ॥

सुखकार श्रावक धर्म करिये, व्रत द्वादश रूपही । संसार पारावार तरिये, कह्यो श्रीजिन भूपही ॥ अविरत सेयां अनें सेवायां, अनुमोद्या हूवै पापही । गुलाब कहै इम शुद्ध श्रद्धो, करो श्रीजिन जापही ॥ १ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥



* श्रीः *

शुद्धाशुद्धपत्रम् ।

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	लिखाना	खिलाना
२	१५	साधूकै	साधूके
३	१०	शागर में	सागर में
४	११	चातुर्मांग	चतुर्मार्ग
४	१२	शरल	सरल
६	४	तरँह	तरह
७	१	त्रोह	वह
७	३	काम में	कामोंमैं
३	१	सकत	सकूने
१०	४	पंचेन्द्रि को	पंचेन्द्री को
१०	१६	सरधो	श्रद्धा
१०	१७	सव दरशी	सर्व दरशी
१२	१२	दृहव्यारे	दृहव्यारे
१२	२०	ज्यां	जहां
१३	१	वरमतां	वर्पतां

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१३	५	स्वारथ	स्वार्थ
१३	७	लाभ	लोभ
१३	८	लगार	लिगार
१३	९	रहा	रहो
१३	११	भापेरे	भाँपेरे
१४	३	द्रोपद	द्रुपद
१४	६	दानूँही	दोनूंही
१४	११	सीमां विवादः	सीमां विवादः
१५	१	स्वयं वरा मराडप	स्वयं वर मराडप
,,	६	दशा	दशा
१७	२	निरपत्ती	निष्पपत्तीं
,,	७	विनास	विनाश
१९	४	न	नें
२०	२	वृक्ष्य	वृक्ष्य
२१	९	मान्स	मांस
,,	१५	सिथिलाचारी	शिथिलाचारी
२४	१३	सर्वज्ञय	सर्वज्ञ
२६	७	धर्मानुरागीयों	धर्मानुरागियों
२६	८	निरपत्ती	निष्पत्ती

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१	यान	यानें
२७	४	उनका	उनको
२७	४	सस्त्रवत	शास्त्रवत्
२७	५	करक	करके
२७	१०	अरघ	अर्घ
२७	१०	मरुापित	मरूपित
२७	१०	धरमही	धर्महो
२८	८	हाके	होके
२८	१०	थेडे हैं	थोडे हैं
२९	११	सहश्र दल	सहस्र दल
३०	६	चक्रवर्त्त	चक्रवर्ती
३०	११	अमौल्य	अमूल्य
३२	८	वेश	भेष
३५	१७	वेपधारी	भेषधारी
३७	२३	इहाया	इछापा
३८	८	गुण शिल	गुण शील
३६	१६	होना	हांःनां
४०	५	नारीया	नारियां
४०	६	औहद	और

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
४०	११	देवतावों नें	देवताओं नें
४०	१२	स्त्रो	स्त्री
४०	२०	हीनाचारीयो	हीनाचार्यों
४१	२४	प्ररूपन	प्ररूपना
४२	१३	श्रा	श्री
४२	२०	रोचते	सोचते
४४	१५	घडा	घोडा
४४	२१	एसा	ऐसा
,,	२२	पापना	पोपना
,,	२४	करक	करके
४५	३	कीया	किया
४५	७	द्रमान्ति	दृष्टान्ति
४६	१	चलावीयो	चलावियो
,,	२	भवियो	भावियो
४६	६	दरखंत	दरखत
,,	२१	हो	है
४७	५	सूर्प	सूर्ख
,,	६	निर्वुद्धीयों	निर्बुद्धियों
४६	१६	मारग	मार्ग

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
४६	२०	दस	दश
५०	८	मिथुन	मैथुन
५०	१२	निरलोभी	निर्लोभी
५१	२	संपतीयों	संयतियों
५१	१२	सर्वग्य	सर्वज्ञ
५१	१४	साधूवों	साधुओं
५२	१	यथासाक्ति	यथाशक्ति
५५	१८	ज्ञानि	ज्ञानी
५८	११	कादाचे	कदाचित्
५८	२०	साहत	सहित
,,	,,	हात है	होते हैं
,,	,,	भांगसें	भांगेसें
,,	,,	जावज्जाव	जावज्जीव
,,	२०	जाग सें	जोगों सें
,,	२२	क्रिया	कीया
५९	१७	कुशाग्रामात्र	कुशाग्रमात्र
६०	१२	जिसहि	जिस ही
६१	४	माटो	मांटो
,,	५	परितीत	परतीत

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
६३	९	कहियो	कह्यो
,,	१४	वोलां	वेलां
६८	८	उमेदसे	उमेद सें
६९	११	कुछभी	कुंछभी
६९	१६	महापीड	महापीडा
७०	७	महारो	म्हारो
,,	१४	गृहस्य	गृहस्थ
७१	१४	जीऊं	जीवूं
७२	१	माहे	मोह
,,	१९	वीपरीत	विपरीत
७३	१७	दुर्दसा	दुर्दशा
७३	१८	पैसी	ऐसी
७५	१७	अवम्न	अवम्भ
७६	७	स्त्रिक	स्त्रीका
७७	१३	पालौ	पोलै
,,	१४	मांष	मोख
७८	२३	नाहि	नही
७९	५	जमबार	जमवार
,,	१२	मोटो	मोटी

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
८०	३	विकारसवी	विकारसेवी
८०	११	पावत्	यावत्
८०	२०	ममान	समान
८१	१५	मनुष्यव्यवहार	मनुष्यजन्महार
८२	२२	लील	लीला
८३	४	सूरवीर	शूरवीर
८३	५	स्त्रिको	स्त्रीको
८४	१४	जाते हैं	जाता हैं
८४	१६	वाला	वाले
८४	१८	ज्ञानीयों नें	ज्ञानियों नें
८५	३	अभिन्तर	अभ्यन्तर
८५	१२	त्रष्णा	तृष्णा
८६	२०	करन	नरक
८७	८	एह	यह
८८	१६	मुन्छा	मूर्छा
६१	३	बोहतसी	बहोतसी
६२	५	प्रोण	प्राणि
,,	१४	कैर	करै
६२	४	उपरंत	उपरान्त

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
९४	२	चाहए	चाहिए
,,	७	सुखा	सुखी
,,	१०	ओपमां	ओपमां
९९	२१	देसतः	देशतः
१००	१	कर्मोरपार्जन	कर्मोपार्जन
१००	१८	जिससें करण पाप	जिससेतृतीयकरणपाप
१०२	११	सारै	सारै
,,	१५	चाक्रिवर्त्त	चक्रवर्त्ती
,,	१६	श्वमेव	स्वयमेव
१०३	७	जि०भ्यारो	जिव्हारो
,,	१९	रत्तन	रत्न
१०४	११	गुणोत्पन	गुणोत्पन्न
,,	१३	त्रषादि	तृषादि
,,	१४	पूरण	पूर्ण
,,	२२	तात्पर	तात्पर्य
१०४	१८	पारण	पारणा
१०८	१३	अथात्	अर्थात्
,,	२०	केवडा	केवडा
१०९	१८	एह	यह

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१११	६	इहां	यहां
,,	,,	अलपमा	अलपसा
११३	२०	दूसरका	दूसरेको
११४	८	दरद हे	दणड है
११६	१६	एहलोक	यहलोक
,,	,,	जिवितव्य	जीवितव्य
११७	६	तात्पर	तात्पर्य
११८	१	विविध	विवध
,,	१५	रात्रि	रात्री
११९	१६	आभ्रणरा	आभरणरा
१२२	१२	तात्पर	तात्पर्य
१२५	८	शर्पादिक	सर्पादिक
१२६	२	लाक	लाके
१३२	१	द्वितिया	द्वितीया
१३६	६	सुब्रण	सुवर्ण
,,	,,	,,	,,
१३६	१४	जाग	जोग
,,	१७	जागों सें	जोगों सें
१३७	१	रात्रि	रात्री
,,	२	सुब्रण	सुवर्ण

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१७३	६	सुमण	सुवर्ण
"	१५	"	"
"	२०	"	"
१३८	८	मजूरीया	मजूरिया
"	"	करम	कर्म
१३६	८	विधि	विध
१४०	२२	आतम	आत्म
१४२	६	हाना	होना
"	१२	निरदोष	निर्दोष
"	१६	इसलीये	इसलिये
१४५	२३	स्वतह:	स्वतः
१४६	२	मिलन	मिलने
१४८	२२	वी	भी
१४६	६	पुर्षों	पुरुषो
"	१०	निरदोष	निर्दोष
"	२४	एवसा	एकसा
"	२२	हाताहै	होताहै
१५०	१	करिक	करिके
"	६	निरंत्तर	निरन्तर

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	८	तात्पर	तात्पर्य
"	१९	याग	योग
१५३	२	अनुमादनें	अनुमोदनें
"	११	ग्रहस्तों	गृहस्थों
"	१२	ग्रहस्त	गृहस्थ
१५७	१९	स्वामी	खाली
१५८	३	निरबुद्धि	निर्बुद्धि
१६८	९	न्याठीला	न्यातीला
१७८	१८	अनरथनुं	अनर्थनूं
१८०	१५	द्वितिप	द्वितीय
१८१	२५	ध्वान	ध्यान
१८२	१३	पटरश	पटरस
१८४	६	चापद	चौपद
१८५	१६	उपस्रग	उपसर्ग
१८६	२२	जगवलभ	जगवल्लभ
१८९	८	कृपावन्त	क्रिपावन्त
"	१३	प्रमेष्ठी	परमेष्ठी
१९०	१२	हासि	हांसी
"	"	कोतुहल	कौतूहल

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१९२	८	कोतुहल	कौतूहल
१९३	१२	दुसरो	दूसरो
१९८	१०	ताजै	तीजै
२०५	५	कुडी	कूडी
२०७	१८	पटवाल	पटबोल
२१०	,,	नत्र	नेत्र
,,	४	माक्रम	पराक्रम
,,	१९	गई	राई
,,	१८	मह्यो	सह्यो
,,	२५	सिघ्र	शीघ्र
२१४	४	हत्रली	हवली
,,	७	छपवेरे	छपावैरे
,,	१६	ढल	ढाल
२१६	३	शर्प	सर्प
२१६	२३	विविध	विवध
,,	२५	द्वितिय	द्वितीय
२१७	१	तृतिय	तृतीय
,,	७	गणीस्वर	गणीश्वर
,,	,,	पातिक	पातक

पाने	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२१६	१२	खासै	खोसै
२२०	११	स्तनम्	स्तवनम्
२२०	१६	तेसुं	तसुं
२२२	१	जपा	जपो
२२३	१६	मुनिवरे	मुनिवरुरे
२२४	२	निमल	निरमल
,,	१७	लोकीके	लोकीक
२२५	१	पामाय	पोमाय
,,	६	उत्राध्ययन	उत्तराध्ययन
२२६	२५	हट्ट	हठ
२२७	२	ल्पाया	ल्पायो
,,	,,	उपशर्ग	उपसर्ग
,,	७	व्हाया	व्हायो
,,	१२	त दया	ते दया
२२८	६	जोवा	जोवो
,,	१६	गला	गोलः